झोंपड़ी की आग महल में

आचार्य श्री नानेश

izdk'kd
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
lerk Hkou] chdkusj jkt-

❖ **झोंपड़ी की आग महल में**

❖ **आचार्य श्री नानेश**

❖ प्रथम संस्करण : **सितम्बर, *2010, 3100* प्रतियाँ**

❖ **मूल्य : *10/-***

❖ अर्थ-सहयोगी :
श्री मगनमलजी नारायणचन्दजी पींचा
देशनोक-दिल्ली

❖ प्रकाशक :
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर- *334005* (राज)
दूरभाष : *0151-2544867, 3292177, 2203150 (Fax)*

❖ आवरण सज्जा व मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष : *9314962475*

प्रकाशकीय

महिमा मण्डित स्व. आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के रतलाम चातुर्मास में सन् 1988 में उन्हीं के सान्निध्य में जैन सिद्धांत विश्वकोष का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। उसी के कथा खण्ड में अनेक कथाओं का भी संयोजन हुआ है। कुछ तकनीकी स्थितियों से उक्त कोष का प्रकाशन कार्य अब तक संभव नहीं हो पाया। कथा से आबाल वृद्ध को सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती है। हर वर्ग उसे रूचि से पढ़ता है। इसलिए कोष में संयोजित कथाओं के प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इस लेखन- सम्पादन में श्री शांतिलालजी मेहता कुम्भागढ़, चित्तौड़गढ़ के अथक परिश्रम को भी नहीं भुलाया जा सकता।

उपरोक्त पुस्तक समता कथा माला पुष्पांक-8 **झोंपड़ी की आग महल में** के रूप में आप सभी के समक्ष प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अर्थ सहयोगी के रूप में श्री मगनमलजी पींचा, देशनोक (राज.) ने जो सहयोग प्रदान किया है। उसके लिए संघ आपका आभारी है।

राजमल चौरड़िया
संयोजक - साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अर्थ सहयोगी

शासननिष्ठ, सुश्रावक देशनोक निवासी श्री मगनमलजी पींचा का जन्म संवत् 1993 में मातुश्री श्रीमती जेठी देवी की रत्नकुक्षी से श्री कुंभकरणजी के घर-आंगन में हुआ। छोटी उम्र में ही पारिवारिक जिम्मेदारी को समझते हुए व्यवसाय के लिए बिहार के छोटे से गाँव चौपड़ा रामनगर में जाकर आपने जूट एवं गल्ले का व्यापार प्रारम्भ किया। बचपन से ही सहशीलता, विनम्रता, दूरदर्शिता एवं सेवा भावना के गुण होने के कारण आपने व्यापार एवं समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। युवा काल में ही परिवार को एक सूत्र में पिरोये रखने का जो आपमें गुण था वह आपकी सहजता, सरलता व मिलनसारिता व वात्सल्यता के गुणों को दर्शाता है।

आप 6 बहिनों के एक अति प्रिय भाई हैं। आपका शुभ विवाह भीनासर निवासी श्री आनन्दमलजी सिंगी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती कमलादेवी के साथ सम्पन्न हुआ। धर्मपत्नी के नाम को सार्थक करते हुए श्रीमती कमलादेवी सदैव अपने परिवार एवं पति के हर सुख-दु:ख में कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग करती तथा पूरे परिवार को सुसंस्कार प्रदान करने में अपना महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन करती थी।

श्री मगनमलजी पींचा के परिवार में 4 पुत्र श्री नारायणचंदजी-लीलादेवी, श्री झंवरलालजी-विमलादेवी, श्री माणकचंदजी-चंचलदेवी, श्री राजेशकुमारजी-मोनिकादेवी, 3 पुत्रियाँ श्रीमती कंचनदेवी-रामचंदजी चौरड़िया, श्रीमती लीलादेवी-विमलचंदजी पटवा, श्रीमती मैनादेवी-ओमप्रकाशजी डागा आपके ही दिखाए हुए संस्कारों को आगे बढ़ा रहे हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री नारायणचंदजी

पींचा का जन्म 15 मार्च 1958 को चौपड़ा रामनगर (बिहार) में हुआ। आप शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् पिता के व्यवसाय में संग्लन हुए।

दिनांक 28 अप्रैल, 1979 को आपका विवाह बनमनक्खी (बिहार) में श्री अनोपचंदजी भूरा देशनोक निवासी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती लीलादेवी के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् सन् 1982 में आप व्यवसाय के लिए दिल्ली चले आए जहाँ पर अपनी पूर्ण निष्ठा, लगन एवं मेहनत से अनाज का व्यापार प्रारम्भ किया। जो निरन्तर उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर है और आज भी आप इसी कार्य में लगे हुए हैं। आप अत्यंत ही मिलनसार व मृदुभाषी व्यक्तित्व के धनी पुरूष हैं। आपने सदैव ही संघ व शासन की सेवा को सर्वोपरि माना है। आपने स्थानीय दिल्ली संघ में आहार-विहार व्यवस्था में अपनी अनुकरणीय सेवाएँ प्रदान की है।

आपके परिवार में एक पुत्र श्री हर्ष पींचा व चार पुत्रियाँ श्रीमती मीतादेवी-नवीनजी डागा, संसारपक्षीय पुत्री मीनू पींचा (वर्तमान में महासती श्री मृणालकंवरजी म.सा.), हिमानी पींचा एवं प्रिया पींचा हैं। आपके संसारपक्षीय द्वितीय पुत्री मीनू पींचा की भगवती दीक्षा परम् श्रद्धेय आचार्य श्री रामलालजी म.सा. के नेश्राय में 23 मई 2010 को दल्लीराजहरा (छ.ग.) में सम्पन्न हुई। श्री नारायण पींचा एवं श्रीमती लीलादेवी ने अपनी संसारपक्षीय पुत्री मीनू पींचा को सदैव संयम अंगीकार करने के लिए प्रेरित किया तथा उसके संयमी भाव को हमेशा उच्च बनाए रखने हेतु प्रयत्नशील रहे। आपने दीक्षा की आज्ञा बिल्कुल सहज भाव से आचार्य श्री के चरणों में देकर अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। आपका भरा-पूरा परिवार आचार्य श्री नानेश एवं आचार्य श्री रामेश के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित है।

अनुक्रमणिका

मातंग को पकड़ा भी, छुड़ाया भी	:	7
झोंपड़ी की आग महल में	:	20
अपातगंधा: पहले व बाद में	:	30
सिकुड़ गई वेणा नदी	:	41
कमठ का विनाशपूर्ण वैर	:	53
परलोक नहीं तो संयम क्यों?	:	67
मूसल पर फूल उगाओगे?	:	78
सुमेरू की अमृत से सिंचाई	:	85
देवदत्ता का दारुण दु:ख	:	96
श्रेष्ठ सुख सुबाहुकुमार का	:	108

मातंग को पकड़ा भी, छुड़ाया भी

विरूपा, तुम गर्भवती हो और इतनी दुर्बल कैसे होती जा रही हो? क्या तुम्हें कोई खास चिन्ता या कष्ट है? मातंग चाण्डाल ने अपनी पत्नी को प्रेमपूर्वक पूछा।

मातंग चाण्डाल अपनी पत्नी विरूपा के साथ राजगृही नगर के बाहरी भाग में चाण्डालों की बस्ती में रहता था। वह हृष्टपुष्ट युवक था तथा छोटी बड़ी कई चमत्कारी विद्याओं तथा कलाओं में निपुण था। विशेष रूप से उसने आकर्षणी नामक एक विद्या साध रखी थी, जिसके बल पर किसी दूरस्थ वस्तु को भी वह खींचकर अपने हाथ में ला सकता था। वह अपनी गर्भवती पत्नी को कुछ दिनों से चिन्तातुर देख रहा था, इसी कारण उसने यह प्रश्न अपनी पत्नी से पूछा।

पत्नी से सकुचाते हुए उत्तर दिया- प्राणनाथ, अब आपको क्या बताऊँ कि मुझे एक असामयिक दोहद उत्पन्न हुआ है, जिसकी पूर्ति नहीं होगी तो मेरी शारीरिक

शक्ति का ह्रास रोका नहीं जा सकेगा।

मैं ऐसा कदापि नहीं होने दूंगा। तुम मुझे अतीव प्रिय हो और प्रियतर है होने वाली सन्तान। मुझे अपना दोहद बताओ, मैं उसे शीघ्र पूरा करने का प्रयास करूंगा।

मुझे सुगंधित एवं स्वादिष्ट आम खाने की इस समय प्रबल इच्छा हो रही है।

आम और इस असमय में?

यही तो मेरा संकोच है, आपको भला बताती कैसे?

पर इस समय आम मिलेंगे कहाँ?

आम मिल तो जाएंगे, किन्तु उन्हें प्राप्त कर पाना अतीव दुष्कर है।

कहाँ होंगे ये आम?

ये आम हैं नगर के राजा श्रेणिक के उस रमणीय उद्यान में जो उन्होंने विशेष रूप से रानी चेलना के मनोरंजन के लिए पिछले कुछ समय में ही निर्मित कराया है, पर वहाँ का पहरा इतना कठोर है कि वहाँ से आम लाना क्या, आम की ओर देख पाना भी कठिन है। अब आप ही सोचिए कि मेरा यह दोहद कैसे पूरा किया जा सकता है? ठंडी आह भरते हुए विरूपा ने बताया।

तुमने ठीक ही कहा है। राजा ने उस उद्यान की कड़ी सुरक्षा व्यवस्था कर रखी है और वहाँ कोई

अपराध करे तो वह उसका बहुत ही कड़ा दण्ड भी देता है। वहाँ के आम क्या मैं तुम्हें खिला पाऊंगा?

जोखिम उठाकर खिला तो सकते हो, फिर तुम्हारी विद्याएँ कब आम आएंगी? अपनी आकर्षणी विद्या के प्रयोग से अवश्य मैं कुछ करूंगा और मेरा विश्वास है कि मैं पकड़ा भी नहीं जा सकूंगा।

मातंग ने वैसा ही किया। उद्यान से बहुत दूर एक पहाड़ी की चोटी पर आम्रवृक्ष की सीध में खड़ा हो गया, उसने अपनी विद्या का प्रयोग किया और एक पका हुआ श्रेष्ठ आम वृक्ष से खिंचकर उसके हाथ में आ गया। आम लेकर वह अपने घर चला आया और आम उसने अपनी पत्नी को खाने के लिए दे दिया। विरूपा ने उसे खाकर अतीव सन्तोष एवं तृप्ति का अनुभव किया और एक आम प्रतिदिन खिलाते रहने का आग्रह भी किया।

अपनी विद्या की सहायता से वह उस उद्यान से प्रतिदिन आम चुराने लगा। उद्यान रक्षक ने प्रहरियों को सावचेत किया और चोर का पता लगा पाने में निराश होकर प्रहरियों ने राजा को अपनी कठिनाई बताई। राजा ने रोषपूर्वक अपने महामंत्री अभय को चोर का शीघ्रातिशीघ्र पता लगा कर दण्डित करने को प्रस्तुत करने का निर्देश

दिया। अभय ने सात दिन के भीतर चोर को पकड़ लेने का आश्वासन तो दे दिया, किन्तु स्थिति की सामान्य समीक्षा के बाद उसे विदित हुआ कि यह चोरी का मामला काफी रहस्यपूर्ण है तथा चोर का पता लगा पाना आसान नहीं है, पर अभय की तीक्ष्ण बुद्धि ने हार मानना तो सीखा ही नहीं था, वह गहरी छानबीन में लग गया।

एक बार अभयकुमार वेश बदलकर नगर में भ्रमण कर रहा था। भ्रमण करते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ नट मण्डली का इन्तजार किया जा रहा था। वह भी उनमें शामिल हो गया। बात ही बात में उसने बात चला दी कि जब तक नट मण्डली नहीं आती है, मैं ही एक कहानी सुना देता हूँ।

क्यों नहीं? एक दौर कहानी का ही हो जाए- कई लोग एक साथ बोल पड़े।

और अभय कहानी सुनाने लगा- तो सुनिए। वसन्तपुर नाम के नगर में जीर्ण नाम का एक सेठ रहता था। उसके एक अतीव सुन्दर कन्या थी। वह कन्या प्रतिदिन उद्यान में कामदेव की पूजा करने के लिए जाया करती थी। वह वहाँ सुन्दर-सुन्दर फूल चुनती और मूर्ति पर चढ़ाती। प्रतिदिन उस अद्‌भुत सौन्दर्य को निहारते-निहारते एक दिन वहाँ के माली की नीयत बिगड़ गई और फूलों

की चोरी के लिए राजा के दण्ड का भय बताते हुए उसने कन्या को पकड़ लिया और कहा- अब तुम्हारे साथ सहवास किए बिना तुम्हें नहीं छोड़ूंगा।

गिड़गिड़ाकर कन्या बोली- देखो, अभी मैं कुआँरी हूँ, मुझे छुओ मत, वरना मेरा सारा जीवन बिगड़ जाएगा। मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि विवाह के बाद पहली रात मैं तुम्हारे पास अवश्य आ जाऊंगी।

माली को उस पर तरस आ गया और उसने कन्या को छोड़ दिया।

कहो भाइयों, आपको कहानी कैसी लग रही है? एक क्षण रुककर अभय ने पूछा और चारों ओर दृष्टि घुमाई। उसने देखा कि सब कहानी सुनने में मग्न हैं, लेकिन वह युवक बेचैनी से ध्रुव तारे की तरफ देख रहा है। उस के हाव-भाव से लगा कि वह वहाँ से जल्दी उठकर कहीं जाने के लिए आतुर है।

किन्तु अन्य सब कहने लगे- कहानी बहुत अच्छी है, सुनाते जाइए।

अभय ने कहानी को आगे बढ़ाया- कुछ समय बाद सेठ ने एक स्वरूपवान बुद्धिशाली युवक के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। पहली रात में आभूषणों से लदकर और सोलहों शृंगार सजकर वह

कन्या अपने पति के समक्ष उपस्थित हुई। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया- विवाह से पूर्व आज की पहली रात एक माली के साथ बिताने का मैंने वचन दे रखा है, अत: अभी वहाँ जाने की आज्ञा चाहती हूँ। पति बुद्धिमान था, उसने कुछ पलों में ही अपनी पत्नी को परख लिया। उसे विश्वास हो गया और उसने जाने की आज्ञा दे दी। तब उद्यान के लिए रवाना हुई। नगर के बाहर चोर मिला, उसने उसे रोककर आभूषण उतारकर उसे दे देने को कहा। कन्या ने अपनी समस्या बताई और लौटते समय आभूषण दे देने का वायदा किया। फिर वह आगे चली तो एक भयंकर राक्षस सामने आया। वह उसे अपना भक्ष्य बनाना चाहता था। कन्या ने उसे भी अपने वचन पालन की समस्या बताई और लौटते समय उसका भक्ष्य बन जाने की अपनी स्वीकृति दे दी।

तब कन्या माली के पास पहुँची। वह तो उसके वचन को भूल ही चुका था। उसे उस रूप में सामने देखकर वह हतप्रभ रह गया। कन्या ने उस दिन की घटना और अपने वचन की याद दिलाई। उसकी याद करके तो माली शर्म के मारे पानी-पानी हो गया- पहली रात अपने पति को छोड़कर वह उसके पास आई है, अपने वचन की कितनी सच्ची है ! उसे वह कन्या देवी

स्वरूपा लगी और देवी माता होती है। माता मानकर वह उसके पाँवों में गिर पड़ा और अपनी उस दिन की नीचता के लिये क्षमा चाहने लगा। कन्या वहाँ से लौट चली। मार्ग में राक्षस उसकी प्रतीक्षा में था। उसने माली के यहाँ जो घटा वह राक्षस को बताया और उसने अपना भक्ष्य बना क्षुधा शान्त करने को कहा। राक्षस का दिल भी पसीज गया। उसने उसे बेटी कहा और छोड़ दिया। नगर के बाहर वह चोर भी उसे खड़ा हुआ मिला, वह बोली- मैं अपने सब आभूषण उतार देती हूँ, अब तुम ले लो। चोर माली की बात जानने को उत्सुक था कि उसने अपने वचन का पालन कैसे किया? कन्या ने सारी घटना कह सुनाई। माली और राक्षस के व्यवहार की बात सुनकर चोर का हृदय भी बदल गया, वह कहने लगा- मेरे लिए भी तुम देवी समान हो, मुझे ये आभूषण नहीं चाहिए। तुम अपने घर चली जाओ। कन्या अपने पति के पास वापिस पहुँच गई। अपनी पत्नी के मुख से सारी घटना सुनकर पति की छाती गौरव से फूल उठी। भाइयों, कहानी समाप्त हुई। पर यह कहानी आपको लगी कैसी?

बहुत अच्छी कहानी है, बहुत अच्छी कहानी है- सब बोल उठे।

तो भाइयों, इस कहानी के बारे में मैं एक प्रश्न

आप से पूछना चाहता हूँ- अभय ने सब ओर देखते हुए कहा।

अवश्य पूछिए- सब बोले।

अभय ने पूछा- पति, माली, राक्षस और चोर- इन चारों में से सबसे बड़ा काम किसने किया?

एक बोला- पति ने सबसे बड़ा काम किया, जिसने अपनी नवपरिणिता पर इतना अधिक विश्वास करके उसे पहली रात बिताने के लिए अन्य पुरुष के पास भेज दिया।

दूसरा कहने लगा- मेरी राय में तो माली का त्याग बड़ा था, जिसने स्वमेव उपस्थित रूपसी के सहवास का मोह त्याग दिया।

एक भोजन प्रेमी था, बोल पड़ा- राक्षस का त्याग सबसे बड़ा था। वह परोसी हुई थाली पर से जो उठ गया।

इस पर मातंग से रहा न गया, आम चुराने के लिए जाने की जल्दी थी सो वह जल्दी से कह गया- सच में तो चोर का त्याग सबसे बड़ा था, इतने बहुमूल्य आभूषणों का लोभ उसने छोड़ दिया। कहते ही मातंग उठ खड़ा हुआ और अभय सहित सभी लोग उठ गए। अभय ने देख लिया कि मातंग तेज गति से रानी चेलना

के उद्यान की दिशा में आगे बढ़ा जा रहा था। अभय ने तुरंत उसे पकड़ लिया।

मातंग, सच-सच बता दो, रानी चेलना के उद्यान में आमों की चोरी तुम किस विधि से करते हो? झूठ बोलने की तनिक भी कोशिश मत करना- अभय ने डांटते हुए पूछा।

वह भयभीत हो उठा। उसने अपना अपराध स्वीकार किया और बोला- मंत्रीवर, मैंने उद्यान में कतई प्रवेश नहीं किया, अतः प्रहरियों का कोई दोष नहीं है। मुझे आकर्षणी आदि कई विद्याएँ सिद्ध हैं और मैं विद्याओं के प्रयोग से ही सदा रात्रि के अन्तिम प्रहर में आम प्राप्त करता रहा हूँ। यह कहकर उसने सारी विधि बता दी।

तुमने ऐसी नीच चोरी का काम क्यों किया? जानते नहीं, महाराज इस पर कितने भीषण रूप से क्रुद्ध होंगे? अभय ने चोरी का कारण जानना चाहा?

मैं ऐसी चोरी कदापि न करता, किन्तु मैं विवश हो गया था। मेरी गर्भिणी पत्नी को आम खाने को दोहद हुआ और मैं इस चोरी के बिना असमय में उसकी इच्छा पूरी नहीं कर सकता था- मातंग ने स्पष्ट किया।

दण्डादेश तो महाराज ही देंगे। तुम्हें महाराज के

सामने ही प्रस्तुत किया जाएगा- अभय ने बताया।

गिड़गिड़ाकर मातंग ने प्रार्थना की- मुझे किसी भी तरह बचा लीजिएगा मंत्रीवर, मैं अपनी होने वाली सन्तान का मुख देखने के लिए बहुत उत्सुक हूँ।

अभय ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उद्यान में से आमों की चोरी करने वाला अपराधी प्रस्तुत है, महाराज- अभय ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया और याद दिलाया कि उसके वादे के सात दिन अभी तक पूरे नहीं हुए हैं।

महाराज श्रेणिक प्रसन्न होकर बोले- अभय, मुझे तुम्हारी विचक्षण बुद्धि पर सदा ही गर्व रहा है और रहेगा। किन्तु तत्क्षण क्रोध से उबलते हुए मातंग चाण्डाल की ओर मुख करके कहने लगा- उद्यान के लिए मेरी सुरक्षा को जानते हुए भी तुमने यह दुस्साहस कैसे किया?

मातंग सफाई में अपनी बात कहने लगा, किन्तु उसे रोकते हुए राजा ने कहा- मैं ऐसे गंभीर अपराध के विषय में कोई सफाई सुनना नहीं चाहता। मेरे राज्य में चोर और दुराचारी को कभी क्षमा नहीं किया जाता। मैं तुम्हें भी कठोरतम दण्ड दूंगा और वह होगा मृत्युदण्ड।

महाराज, मैं चोर नहीं हूँ, मजबूरी में चोरी कर

बैठा हूँ। मुझे जीवन दान दे दीजिए। रो पड़ा मातंग, पर महाराज ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

अभय को विचार आया- महाराज क्रुद्ध हैं लेकिन मातंग को छुड़ाना चाहिए, उसे अपनी सन्तान का मुँह देखना है। इस राजहठ को विधिपूर्वक ही मोड़ देना होगा कि मातंग का जीवन बचाया जा सके। उठकर उसने महाराज से निवेदन किया- राजन्, इसे मृत्युदण्ड दें या अन्य कोई दण्ड, यह आपका विवेकाधिकार है, किन्तु इस सम्बन्ध में मेरा एक निवेदन है।

कहो, महामंत्री- राजा ने निर्देश दिया।

इस मातंग के पास ग्रहण करने योग्य उपयोगी विद्याएँ हैं। इसकी मृत्यु के साथ वे विद्याएँ भी नष्ट हो जाएंगी।

तो क्या तुम्हारे कहने से इसका मृत्युदण्ड रोक दूँ? राजा का क्रोध शान्त नहीं हुआ था।

मैं तो यह निवेदन करना चाहता था कि वे विद्याएँ पहले इससे आप सीख लें।

हाँ, यह सुझाव तो सही है। नीच से उत्तम विद्या सीखने का नीतिकार आदेश देते हैं। अच्छा मातंग, मेरे सिंहासन के पास आ जाओ और मुझे अपनी सिद्ध विद्याएँ सिखा दो। देखो, विलम्ब न लगाना।

मृत्युभय से थर-थर कांपता हुआ मातंग महाराजा के पास तक गया और अपनी साधी हई विद्याओं के मंत्रों का धीरे-धीरे उच्चारण करने लगा, ताकि महाराजा उन मंत्रों का अनुगामी उच्चारण करके उन्हें यथासाध्य शीघ्र कण्ठस्थ कर सकें। वह बार-बार दोहराता, पर महाराजा को मंत्र याद ही नहीं होते। श्रेणिक झुंझला पड़ा, डांटकर बोला- अरे दुष्ट, क्या तू मन से मंत्र नहीं सिखा रहा है? मुझे मंत्र याद क्यों नहीं हो रहे? मेरी स्मरण शक्ति दुर्बल थोड़े ही है।

मातंग बेचारा क्या उत्तर देता? उत्तर दिया अभय ने- राजन्, आपको मंत्र याद कैसे होंगे? आप एक बड़ी भूल जो कर रहे हैं?

क्या भूल कर रहा हूँ मैं और वह भी तुम बड़ी भूल बता रहे हो?

हाँ महाराज, सिखाने वाले को गुरु मानकर सम्मान नहीं देंगे तो शिक्षा स्थिर कैसे होगी?

श्रेणिक ने भूल स्वीकार की। मातंग को सिंहासन पर बिठाया, स्वयं सामने खड़ा रहा और तब मंत्र याद करने लगा। मंत्र तुरन्त ही याद हो गए। सन्तुष्ट होकर राजा ने कहा- सही है विद्या विनय से ही आती है। तब अभय बोला- महाराज, अब गुरु को दक्षिणा में कुछ तो देना होगा।

महाराज पुनः अपने सिंहासन पर बैठ चुके थे, उन्होंने कहा- जो लेनी है दक्षिणा ले लो और मृत्युदण्ड के लिए तैयार हो जाओ। अभय ने फिर रोका- राजन्, गुरु अवध्य होता है, अतः दक्षिणा में जीवनदान दे दीजिए। तब राजा ने जीवनदान के साथ मातंग को स्वर्णदान भी दिया।

स्त्रोत- त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र।

सार- बुद्धि सदा बुद्धि की रक्षा करती है।

❖ ❖ ❖

झोंपड़ी की आग महल में

दासी, हमें बड़ी तेज सर्दी का अनुभव हो रहा है। ऐसा लगता है, जैसे हमारे सारे अंग ठिठुर रहे हैं और पूरा शरीर अकड़ गया है। जल्दी से कुछ करो- काशी की महारानी करुणा ने स्नानोपरांत कांपते हुए अपनी दासी को कहा।

महारानी का नियम था कि वह प्रतिदिन प्रातः गंगा नदी में स्नान करने आया करती थी एक निर्धारित स्थल पर। इस स्थल के आसपास गरीब लोग अपनी कच्ची घास फूस की झोंपड़ियों में बसे हुए थे। इस कारण वहाँ पर यह आदेश लागू था कि जब महारानी स्नान करने के लिए वहाँ पहुँचे, उन झोंपड़ियों के सारे निवासी वहाँ से कहीं दूर चले जाएँ तथा महारानी के स्नान कर लेने और उसके जाने के काफी समय बाद ही वापिस लौटें। तदनुसार उस समय भी उन झोंपड़ियों के सारे निवासी अपनी-अपनी झोंपड़ी छोड़कर कहीं दूर गए हुए थे।

वह माघ का माह था तथा प्रातः का समय था ही। उस दिन शीत का कुछ विशेष ही प्रकोप था। महारानी हमेशा की तरह गंगानदी के शान्त और शीतल जल में घुस तो गई, पर उसके बाद सर्दी से वह कांपने लगी। उसी दशा में उसने अपने साथ आई दासी को उक्त बात कही।

सुनकर दासी घबरा गई कि अब ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? वह बोली- महरानी जी, देखती हूँ कि कुछ सूखी लकड़ी मिल जाए, जिसे जलाकर आपके लिए ताप की व्यवस्था करती हूँ।

दासी, जो कुछ करना है जल्दी कर। ठिठुरन से मेरी देह जकड़ी जा रही है- महारानी वस्त्रों में लिपट कर भी शीत के उस तीव्र प्रहार को सह नहीं पा रही थी।

इधर-उधर घूमकर दासी शीघ्रता से वापिस आ गई और कहने लगी- रानीजी, यहाँ तो कोई सूखी लकड़ी नहीं मिली है, आपकी शीत का त्रास कैसे दूर करूं? आप कहें तो शीघ्रता से महल में ही लौट चलें। अन्य कोई उपाय नहीं है।

कितनी मूर्ख है तू? मैं हिल तक नहीं पा रही हूँ और तू मुझे महल चलने की बात कह रही है।

तो मैं क्या करूँ? आप ही बताइए। मेरी बुद्धि में तो कुछ नहीं आ रहा।

बुद्धि है ही कहाँ तेरे में? यह जो पास वाली झोंपड़ी है, इसी में आग लगा दे। मुझे उसके ताप से शान्ति मिल जाएगी। देर न लगा। देखती नहीं, मैं थर-थर कांप रही हूँ- महारानी ने आदेश दिया।

लेकिन रानीजी, यह तो काशी के ही एक नागरिक का निवास स्थान है, भले ही वह गरीब हो। उसका निवास स्थान इस तरह जला दिया जाएगा तो वह बेचारा वापिस लौटकर रहेगा कहाँ? दासी ने रानी को उसके दायित्व का भान कराया।

तुझे एक गरीब नागरिक पर करुणा आ रही है और अपनी महारानी के लिए कोई विचार नहीं। जो मैं कह रही हूँ, वही कर- क्रोधपूर्वक महारानी बोली।

महारानी का नाम करुणा अवश्य था, पर विडम्बना यही थी कि उसके अन्त:करण में करुणा का रंचमात्र भी भाव नहीं था। वह बोली- बिना एक शब्द भी मुँह से निकाले तुरन्त इस झोंपड़ी में आग लगा दो। अब बोली तो सिर मुंडवा कर नगर से निकलवा दूंगी।

दासी तब क्या बोल पाती? उस ने झोंपड़ी में आग लगा दी। झोंपड़ी का सामान और घास फूस तेजी

से जलने लगा तथा उस आग से रानी अपनी सुकोमल देह तापती रही। स्वस्थ होकर रानी चली गई और उस झोंपड़ी के स्थान पर मात्र राख का एक ढेर रह गया।

किन्तु दुर्घटना का वहीं तक अन्त नहीं हुआ। शीत लहर चल रही थी और वायु का वेग प्रबल था। जलती हुई उस झोंपड़ी की चिनगारियाँ उड़कर आसपास की झोंपड़ियों पर गिरती रही और एक-एक करके वहाँ की सारी झोंपड़ियाँ जल उठी। जब उस बस्ती के लोग लौटे तो सारी बस्ती एक विशाल राख के ढेर में बदल चुकी थी। एक रानी के शीत हरण में सारे निवासी शीतग्रस्त ही नहीं, सभी प्रकार के अभावों से ग्रस्त हो गए थे।

लौटकर सबने जो वह हाल देखा तो हक्के-बक्के रह गए। कहाँ रहेंगे वे? उनके परिवारों की क्या दशा होगी? अब क्या करें वे? उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा सिवाय इसके कि काशी नरेश की सेवा में पहुँचकर वे सहायता की गुहार करें।

महाराज की जय हो। हम पर विकट आपदा आ गई है, हमारी सहायता करें- उस बस्ती के बूढ़ों, युवाओं, स्त्रियों और पुरुषों ने राज्य सभा में पहुँचकर पुकार लगाई।

कैसी विपदा आ गई है तुम लोगों पर- काशी नरेश ने पूछा।

एक वृद्धजन ने आगे बढ़कर सारी बात बताई, किन्तु उसने महारानी का नाम नहीं लिया।

महाराज ने पूछा- सारी झोंपड़ियाँ जलती रही और तुम लोग देखते रहे? आग बुझाने का क्या तुम लोगों ने प्रयास तक नहीं किया?

प्रयास करने का अवसर ही नहीं था, महाराज, हम लौटकर आए तब तक तो सारी झोंपड़ियाँ जल चुकी थी।

कहाँ गए थे तुम सबके सब लोग एक साथ?

प्रतिदिन ही प्रात:काल हम सब लोगों को अपनी झोंपड़ियाँ छोड़कर चले जाना होता है, जब महारानी जी स्नान करने के लिए पधारती हैं।

अच्छा, तो तुम नहीं जानते कि आग कैसे लगी थी?

महाराजा ने यह कहा और जैसे कुछ याद आया हो, प्रहरी को बुलाया और उस दासी को उपस्थित करने का आदेश दिया जो उस दिन महारानी को स्नान कराने के लिए ले गई थी। दासी आई तो राजा ने पूछा- महारानी को स्नान कराने के लिए गंगातट पर आज क्या तुम गई थी?

हाँ, महाराज।

क्या तुम बता सकती हो कि वहाँ की झोंपड़ियों में आग कैसे लगी?

राजन्, एक झोंपड़ी में आग मैंने लगाई थी- और वही आग सारी की सारी झोंपड़ियों में फैल गई होगी।

तुमने आग लगाई थी? क्यों?

महारानी जी की आज्ञा से- कहते हुए दासी कांप उठी थी।

महाराजा विचार में पड़ गए, आगे कुछ नहीं बोल पाए। कुछ देर सोचते रहे। फिर झोंपड़ी वासियों की ओर मुड़कर राजा ने कहा- आपको सताने वाला जो कोई भी हो, आपके साथ पूरा-पूरा न्याय किया जाएगा। आप लोगों को फिर से बसाने में पूरी सहायता भी की जाएगी तथा अपराधी को यथोचित दण्ड भी मिलेगा। आप लोग कल राज्यसभा में इसी समय पुनः आवें- न्याय आप लोगों के सामने होगा। कहकर राजा अपने सिंहासन से उठकर तुरन्त भीतर चला गया।

काशी नरेश को वह रानी सर्वाधिक प्रिय थी, क्योंकि वह युवा थी और अपने रूप-लावण्य में अद्वितीय थी। राजा भारी दुविधा में पड़ गया- एक ओर थी भोग सुख देने वाली प्रिय रानी और दूसरी ओर झोंपड़ी बस्ती के लोगों को न्याय दिलवाने की मांग। क्या करना चाहिए उसे? राजा का कर्त्तव्य बोला कि उसे सिर्फ न्याय की

बात सोचनी चाहिए- न्याय नहीं तो वह राजा कैसा? भोग की लालसा ने भी अपना मुँह निकाला लेकिन राजा ने उसका मुँह ढक दिया। फिर भी वह अपनी उस रानी के पास पहुँचा। काश! कोई मार्ग निकल आए कि उसकी दुविधा हल हो जाए।

रानी को अपने पास बिठाकर राजा ने पूछा- आज तुमने यह क्या पागलपन किया कि बस्ती की सारी झोंपड़ियाँ जलवा दीं? तुम्हें रानी होने के नाते तनिक विचार तो करना चाहिए था कि झोंपड़ियाँ जल जाने पर उन लोगों की कैसी दुर्दशा हो जाएगी?

सब झोंपड़ियाँ मैंने जलवाई, यह किसने कहा ? मैंने तो मात्र एक झोंपड़ी में आग लगवाई थी ठंड से ठिठुरते हुए अपने शरीर को ताप पहुँचाने के लिए- इसमें पागलपन की क्या बात हो गई?

एक झोंपड़ी की आग सब झोंपड़ियों में फैलनी ही थी, यह भी तुमने नहीं सोचा और एक झोंपड़ी में भी आग लगाकर अपना शरीर तपाने के लिए उसके निवासी को बेघर बना देने का तुम्हें क्या अधिकार था? यही तो तुमने अन्याय किया।

वाह महाराज! मैं महारानी और एक झोंपड़ी तक जलाने का मुझे अधिकार नहीं- यह मैंने अन्याय कर दिया? घासफूस की झोंपड़ियाँ जल ही गई तो कौनसा

अन्याय हो गया? फिर से बना डालेंगे वे लोग। राजकोष से उसके लिए धन दे दीजिए- मानिनी रानी बोली।

राजकोष का धन अन्याय में लगाने के लिए नहीं होता और राजा का न्याय अन्यायी को बख्शता भी नहीं- राजा ने चेतावनी के स्वर में कहा।

तो लगता है कि झोंपड़ी की आग महल में चली आई है।

हाँ रानी, अब लगने की बात नहीं रही। हकीकत में झोंपड़ी की आग महल में चली ही आई है। अब महल को ही झोंपड़ियों के आँसू पौंछने होंगे। राजा ने कहा पर रानी कुछ समझी नहीं।

राज्यसभा दर्शकों से खचाखच भर गई थी- राजा का गंभीर न्याय जानने के लिए।

अभियोगियों के रूप में झोंपड़ियों के निवासी सामने खड़े थे। महारानी के साथ स्नान के समय गई दासी भी एक ओर खड़ी थी। सबसे फिर पूछताछ करने के बाद राजा ने आज्ञा दी- महारानी को मेरे समक्ष उपस्थित करो। ध्यान रहे, उसे सारे राजकीय वस्त्राभूषण उतरवा कर मात्र एक सादी सफेद साड़ी में यहाँ लाया जाए।

आज्ञा का पालन हुआ और उस सादे वेश में रानी करुणा वहाँ उपस्थित हुई।

राजा ने कठोर मुद्रा धारण करके कहा- अपने लिए गरीब की झोंपड़ी जलवा कर तुमने अन्याय किया है, क्या कहना है तुम्हें इस विषय में?

मानिनी का मान भंग हो गया था- रस्सी जल गई थी फिर भी बट नहीं मिटा था। वह कहने लगी- झोंपड़ी जल गई तो कौनसा अनर्थ हो गया? उसका मूल्य ही कितना है?

क्या तुम बता सकती हो कि जिस महल में तुम रहती हो उसका मूल्य कितना है?

यह तो आपका कोई भी निर्माण अधिकारी सरलता से बता देगा।

मूल्य क्या होता है, यह भी तुम नहीं जानती। मानव हृदय के मूल्य की बात मैं पूछ रहा हूँ। जैसे तुम्हें अपना महल प्रिय है, उतनी प्रिय है उन लोगों को अपनी-अपनी झोंपड़ी। इनका भी अपना रहने का सुख है, उस सुख को तुमने मिटाया है और यही तुम्हारा अन्याय है।

घास-फूस की ही तो झोंपड़ियाँ थी, इसमें इतना गंभीर प्रश्न क्यों उठाया जा रहा है? ये लोग फिर से अपनी झोंपड़ियाँ बना सकते हैं।

बस, मैं तो यही तो न्याय करना चाहता हूँ कि

इनकी जलाई हुई झोंपड़ियाँ वापिस बन जाएँ, ताकि ये लोग उनमें पूर्ववत् निवास कर सकें।

तो कर दीजिए ऐसा न्याय। मुझे क्या आपत्ति है? महारानी ने मान के साथ कहा।

तुम्हें आपत्ति नहीं है तो मुझे न्याय करने में अधिक सुविधा होगी। मैं निर्णय देता हूँ कि तुम तब तक महल से बाहर रहोगी जब तक जली हुई सारी झोंपड़ियाँ वापिस नहीं बन जाए और ये झोंपड़ियाँ बनेंगी तुम्हारी अपनी मेहनत से कमाई हुई आय से। तभी तुम्हें झोंपड़ी और गरीबी का मूल्य समझ में आ जाएगा।

रानी ने राजा के न्याय के आगे अपना सिर झुका लिया। झोंपड़ी की आग जब महल में पहुँच गई थी तब उस आग को बुझाने और नई झोंपड़ी बनाने का जिम्मा महल को ही तो उठाना पड़ेगा।

स्त्रोत- आवश्यक निर्युक्ति टीका।

सार- सच्चा न्याय करना राजा का अनुपम गुण होता है।

❖ ❖ ❖

अपातगंधाः पहले व बाद में

महाराज, मार्ग के एक ओर यह नवजात बालिका पड़ी हुई है- सैनिकों ने राजा श्रेणिक को सूचना दी।

महाराज श्रेणिक अपने राजप्रासाद से गुणशील उद्यान की ओर जा रहे थे, जहाँ समत्व मूर्ति भगवान विराजमान थे।

देखो, किसी पापिनी ने अपने पाप का फूल यहाँ फैंक दिया है, किन्तु हम अहिंसा धर्मियों का कर्त्तव्य है कि उसकी रक्षा की जाए- श्रेणिक ने निर्देश दिया।

सैनिक वहाँ तक गए, जहाँ वह बालिका पड़ी हुई थी और तुरन्त लौटकर आए। एक सैनिक ने निवेदन किया- राजन्, वह बालिका तो हाथ लगाते ही जोर-जोर से रोने लगती है, वह तो ठीक किन्तु उसके शरीर से इतनी भयंकर दुर्गंध फूट रही है कि एक क्षण भी उसके पास में खड़ा रहना असह्य प्रतीत होता है।

ऐसा हो तो भी स्थिति का समभाव से सामना

करो, इस समय तो हमारी भावना उत्कृष्ट रहनी चाहिए- आखिर हम भगवान महावीर के दर्शन करने जो जा रहे हैं। जाओ, उसकी रक्षा का कुछ प्रबन्ध करो- राजा ने अपने सैनिकों को पुनः निर्देश दिया।

सैनिक गए और पुनः आ गए। राजा को सूचना दी- महाराज, इस बीच कोई ग्रामीण स्त्री आई और वह उस कन्या को बिना किसी तरह की घृणा दिखाए अपने आंचल में समेट कर ले चली गई है।

चलो अच्छा हुआ, उसकी रक्षा हो जाएगी, लेकिन इस कन्या के संदर्भ से एक गांठ अपने मन में बांध लो कि अवांछित या अमनोज्ञ के साथ में भी घृणा कदापि नहीं की जानी चाहिए। पुद्गलों के दोनों रूप होते हैं- मनोज्ञ और जो स्थिर नहीं होते- एक दूसरे रूप में परिवर्तित होते रहते हैं, अतः इन पुद्गल पर्यायों के प्रति यथासाध्य समभाव का दृष्टिकोण बनाना चाहिए- श्रेणिक ने सैनिकों को शाश्वत सत्य का दर्शन कराया।

संकोच भाव से सैनिक बोले- महाराज उसके शरीर की दुर्गंध इतनी भयंकर थी, जैसे कि सड़े हुए मलमूत्र का विशाल ढेर ही गंधा रहा हो। उस बालिका को ले जाने के बाद भी वह स्थान दुर्गंध से भरपूर था, पर आपका बताया सत्य हमने हृदय में उतार लिया है। सब उद्यान में पहुँचे।

भगवान महावीर की विधिवत् वन्दना करने के पश्चात्- श्रेणिक ने करबद्ध होकर निवेदन किया- भगवन्, अभी मार्ग में ऐसी नवजात कन्या पड़ी हुई दिखाई दी जिसके शरीर से भयंकर दुर्गंध फूट रही थी। कौन थी वह कन्या और उसने ऐसा क्या कर्मबंध किया था कि उसे ऐसी अशुभता प्राप्त हुई?

श्रेणिक, यह बालिका इसी नगर की एक वेश्या के उदर से जन्मी है, जिसने उसे राजमार्ग पर फैंक दिया- भगवान ने कहा।

प्रभो, कृपा करके इस बालिका के पूर्वजन्म पर भी प्रकाश डालें।

राजन्, अपने बांधे हुए अशुभ कर्मों के अशुभ फल को भी प्रत्येक जीव को भोगना ही होता है, अपनी अपनी देशकाल स्थिति के अनुसार उसी भव में या आगामी भवों में। यह बालिका अपने पूर्वजन्म में शालिग्राम के धनमित्र सेठ की पुत्री थी। तब इसका नाम धनश्री था। एक बार कुछ तपस्वी मुनि सेठ के यहाँ भिक्षा हेतु पहुँचे। गरमी की ऋतु थी और पसीने के कारण उन मुनियों के वस्त्रों से यत्किंचित् दुर्गंध आ रही थी। भिक्षा के लिये धनश्री तत्पर थी तथा भिक्षा उसने भावपूर्वक भी दी, पर सुगन्धप्रिय होने से वह अपने मन में उन

मुनियों के प्रति उठे जुगुप्सा भाव को नहीं रोक पाई। त्यागी सन्तों के प्रति जुगुप्सा घृणा करने के कारण उसने ऐसे अशुभ कर्मों का बंध किया, जिनके फलस्वरूप उसे इस जन्म में ऐसा दुर्गंधयुक्त शरीर प्राप्त हुआ है। महावीर ने उस बालिका के अतीत का विस्तार से वर्णन किया।

श्रेणिक की जिज्ञासा उसे सुनकर बढ़ गई, वह बोला- भगवन्, जिसका अतीत और वर्तमान ऐसा है उसका भविष्य कैसा होगा, यह जानने की भी मेरी प्रबल इच्छा हो गई है।

तो उसे भी जान लो श्रेणिक, वह तुम्हारे जानने लायक है।

प्रभु, आप ऐसा क्यों फरमा रहे हैं कि वह मेरे जानने लायक है? मेरा उससे भला क्या सम्बन्ध?

यही मैं तुम्हें बताने जा रहा हूँ। यही कन्या अपातगंधा के नाम से जानी जाएगी। इसके शरीर की दुर्गंध धीरे-धीरे मिट जाएगी और यह सर्वांग सुन्दर एवं मनमोहक रूप-स्वरूप वाली हो जाएगी कि कोई सहज रूप से उसके प्रति आकर्षित हो जाए।

ऐसा आश्चर्य भी घटित होगा, प्रभु! इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह होगी कि यही कन्या तुम्हारी पटरानी बनेगी। भगवान ने कहा। कर्मफल की

विचित्रता अकल्पनीय होती है।

यह क्या फरमाया भगवन्, यही कन्या और मेरी पटरानी? आप तो सर्वज्ञ हैं किन्तु मैं कैसे जान पाऊंगा कि ऐसा हुआ है?

यह तथ्य भी तुम पर प्रकट हो जाएगा। इस कन्या के साथ तुम्हारा विवाह हो जाने के बाद एक बार तुम उसे खेल-खेल में घोड़ा बनाकर अपनी पीठ पर चढ़ाओगे और जब वह तुम्हारी पीठ पर चढ़कर लीलाएँ करे तब समझ लेना कि वह यही कन्या है, अन्य नहीं- यही अपातगंधा और दुर्गंधा।

अतीव आश्चर्य है प्रभो- श्रेणिक ने विचार मग्न होते हुए कहा और आश्चर्य भावों में डूबते-उतराते ही वह अपने स्थान को पहुँचा।

उस अपातगंधा-दुर्गंधा बालिका को जो ग्रामीण स्त्री उठाकर ले गई थी वह एक बांझ गूजरी थी। उसने कन्या की दुर्गंध को महसूस नहीं किया, बल्कि उसके साथ स्नेहमयी ममता के बंधन में बंध गई। उसने उसे अपनी ही पुत्री की तरह पाला और उस लालन-पालन का ही प्रभाव उसे समझ में आया कि धीरे-धीरे उसके शरीर से निकलती हुई दुर्गंध कम होती हुई मिट गई। इतना ही नहीं, षोडशी के रूप में उसका अनखिला

सौन्दर्य ऐसे मन मोहक के रूप में खिल उठा कि वह सुदर्शनीया बन गई। गूजरी माँ को अपनी ऐसी रूपसी पुत्री पर गर्व होने लगा।

जब राजगृही के उद्यान में कौमुदी महोत्सव का आयोजन हुआ तो वह गूजरी इसी गर्वोन्नत भाव के साथ अपनी इस पुत्री को साथ में लेकर महोत्सव में सम्मिलित हुई। इस सार्वजनिक महोत्सव में सभी नागरिक ही नहीं, बल्कि राजा और राज्याधिकारी सभी भाग लेते थे तथा प्राकृतिक एवं मानवीय सौन्दर्य का आनन्द उठाते थे।

राजा श्रेणिक भी अपने महामंत्री अभय एवं अन्य राजपुरुषों के साथ उस उद्यान में भ्रमण कर रहा था। तभी उसकी दृष्टि अकस्मात् उस गूजरी युवती पर पड़ी। वह दृष्टि क्या पड़ी कि राजा की आँखें वहीं की वहीं ठहर गई। वह उसके रूप पर मुग्ध ही नहीं हुआ, बल्कि यों कहना चाहिए कि मोहाविष्ट हो गया। उसे प्राप्त कर लेने को वह अधीर हो उठा।

इसी अधीरता में श्रेणिक को एक विनोद सूझा। अभय आदि की नजर बचाकर उसने अपनी राजमुद्रिका इतनी गोपनीय रीति से उस षोडशी कन्या के पीछे लटकते आंचल से बांध दी कि उस कन्या तक को विदित नहीं हुआ। फिर थोड़ा आगे बढ़कर राजा ने

अपने महामंत्री को आवाज दी और बताया- अभय, मेरी राजमुद्रिका मुझे लगता है कि अभी-अभी किसी ने चुरा ली है। तुम जरा शीघ्र उसका पता लगाओ- कहकर राजा मन ही मन हौले-हौले मुस्कुराया।

अभय ने मामले को गंभीरता से लिया और उस उद्यान में जो जहाँ था, उसे उसी अवस्था में खड़े रहने का आदेश दिया। फिर एक-एक की तलाशी ली जाने लगी। अन्त में गूजरी युवती के आंचल से बंधी राजमुद्रिका का पता चल गया। अभय उसे पकड़कर राजा के समक्ष ले गया और बोला- आपकी राजमुद्रिका इस युवती ने चुराई है। वह इसके आंचल से बंधी हुई थी।

वह युवती आश्चर्य के साथ कहने लगी- महाराज, मैं तो इस राजमुद्रिका के बारे में कुछ भी नहीं जानती। यह न तो मेरी दृष्टि में आई है और न वह ही जिसने चोरी-चोरी इसे मेरे आंचल से बांध दी। मैं एकदम निर्दोष हूँ।

अभय गंभीर था। वह युवती गंभीर थी किन्तु राजा की आकृति पर गंभीरता रंच मात्र भी नहीं थी। बुद्धिमान अभय को सब समझते देर नहीं लगी। तभी मन्द-मन्द मुस्कुराहट के साथ श्रेणिक ने पूछा- क्यों अभय, चोर का पता चल गया?

महामंत्री ने भी राजा की मन्द मुस्कुराहट में अपनी मधुरता घोल दी- हाँ राजन्- राजमुद्रिका की चोर यह युवती है या नहीं यह तो आप ही जानें, किन्तु मैं इतना जान गया हूँ कि इस अपूर्व सुन्दरी ने आपका हृदय अवश्य चुरा लिया है, सो चोर तो यह हुई ही।

श्रेणिक ने कहा- अभय, रत्न चाहे कहीं भी पड़ा हो, वह सदा ही ग्राह्य होता है।

अभय के लिए यह संकेत पर्याप्त था। उस गूजरी युवती के साथ राजा श्रेणिक का विधिवत् विवाह हो गया। परम आसक्ति के भाव से उसने उस नव-विवाहिता को अपना पटरानी पद प्रदान किया तथा रात दिन उस गूजरी युवती-अपातगंधा के प्रेम पाश में बंधकर श्रेणिक आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। भगवान की भविष्यवाणी जैसे भूल ही गया।

पटरानी अपातगंधा की गहरी आसक्ति में ऐसा डूबा महाराजा श्रेणिक कि वह एक प्रकार से अन्तःपुर का ही वासी हो गया। उसकी नई रानी उसके लिए भोग्या तो थी ही, परन्तु वह बाल लीलाओं का स्रोत भी बन गई। राजा स्वयं बालक की तरह व्यवहार करता और जैसे अपनी बालिका साथिन के साथ बाल क्रीड़ाएँ करता।

एक बार ऐसी ही एक बाल क्रीड़ा में दोनों के

बीच शर्त लगी कि जो इसमें हारेगा, वह घोड़ा बनकर जीतने वाले को अपने ऊपर चढ़ाएगा। खेल का नतीजा ऐसा निकला कि राजा हार गया। उसे घोड़ा बनना पड़ा और उसकी पीठ पर बैठी अपातगंधा।

उसी क्षण श्रेणिक को याद आ गई भगवान महावीर की भविष्यवाणी- यह वही दुर्गंधा बालिका है जिसकी भयंकर दुर्गंध को सैनिक भी नहीं सह सके थे और आज यही उसकी गहन आसक्ति की पात्र एवं पटरानी बनी हुई है। पुद्गलों का कैसा-कैसा विचित्र परिवर्तन होता रहता है- अमनोज्ञ से मनोज्ञ भी।

और राजा अपने ही पर ठठाकर जोर से हँस पड़ा, लेकिन चौंक गई अपातगंधा और राजा की पीठ पर से तुरन्त नीचे उतरकर खड़ी हो गई- यह अचानक राजा को क्या हो गया है? उसने उत्सुकतावश उसी समय पूछा- प्राणनाथ, यह अकस्मात् प्रसन्नता का मुक्त आवेग कहाँ से उमड़ पड़ा है? मैं तो इसे देखकर विस्मित रह गई हूँ। क्या इस मुक्त हास्य का कोई विशेष रहस्य है?

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है- राजा ने बात टालनी चाही।

किन्तु अपातगंधा ने हठ पकड़ा- आप अवश्य मुझसे कुछ छिपाना चाहते हैं, क्या आप मुझे अपने पूरे

हृदय से प्रेम नहीं करते? यदि करते हैं तो मुझसे ही छिपाने की भला क्या बात हो सकती है?

तुमसे छिपाने जैसी कोई बात नहीं है परम प्रिये, क्योंकि यह बात तो तुमसे ही सम्बन्धित है।

मेरे से ही सम्बन्धित बात? ऐसी क्या बात हो सकती है कि आप प्रसन्नता और हास्य में डूब गए? लेकिन इतना अकस्मात् कैसे? तत्काल में तो ऐसी कोई बात हुई ही नहीं थी- पटरानी अपने महाराज का मुँह देखती हुई खड़ी रही।

अकस्मात् का भी कारण है कि अकस्मात् ही भूली बात याद आई है- कहते हुए श्रेणिक ने भगवान् महावीर की कई वर्ष पूर्व उच्चरित की गई भविष्यवाणी का उल्लेख किया। उससे हर्षित होकर अपातगंधा बोली- क्या प्रभु महावीर ने हमारे विवाह की बात आपको मेरे जन्म के समय ही बता दी थी?

हाँ, प्रिये।

तो मेरे जनम के समय मेरे साथ आपका परिचय कैसे हुआ? मैं तो शालिग्राम में थी, क्या आप शालिग्राम पधारे थे?

नहीं अपातगंधा, तुम इसी राजगृही में जन्मी थी। गूजरी ने तो तुम्हारा पालन पोषण किया है, वह तुम्हारी जन्मदाता माता नहीं है।

महाराज, फिर मेरी माता कौन है और आपने मुझे जन्म के समय कहाँ देखा, कैसे देखा? सभी कुछ मुझे बताइए और मेरी जिज्ञासा को शान्त कीजिए- अनुनय किया अपातगंधा ने।

और राजा श्रेणिक ने उसके जन्म से लेकर विवाह तक की सारी बात उसे बता दी। आश्चर्य से चकित और दु:खित दोनों हुई उसकी पटरानी। उसने उसी भाव के साथ पूछा- प्राणनाथ, आपने मेरे ऐसे अशुभ कर्मबंध के विषय में भी तो भगवान से पृच्छा की होगी?

हाँ की थी। वह भयानक दुर्गंध तुम्हें इस कारण मिली थी कि तुमने तपस्वी सन्तों की सामान्य सी दुर्गंध के प्रति जुगुप्सा का भाव दर्शाया था- कहकर राजा ने उसे उसके पूर्वभव की कहानी भी सुना दी।

धनश्री की कहानी सुनी अपातगंधा ने और वह कर्मों के खेल के बारे में गूढ़ता से सोचने लगी- अशुभ कर्मों का फल और उसके बाद शुभ कर्मों का फल चख कर अब उसे कर्म क्षय के पथ पर अग्रसर होना चाहिए। उसने राजा से दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्राप्त कर ली।

स्त्रोत- त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र।

सार- पण्डित वही जो समदर्शी रहता है।

❖ ❖ ❖

सिकुड़ गई वेणा नदी

प्राचीन काल में भरत क्षेत्र के दक्षिणी भाग में कृष्णा और वेणा नामक दो नदियों के मध्य एक छोटा-सा भूमिखण्ड था, जो अचलपुर के नाम से जाना जाता था। उसी अचलपुर में उस दिन भारी हलचल मची हुई थी। वहाँ के निवासी सरल हृदय और भोले-भाले थे। उनमें परीक्षा बुद्धि भी नहीं थी, अतः पर्याप्त से भी अधिक आस्था थी, अन्धता के बिन्दु तक बढ़ी हुई। कुछ लोग सजग और स्वस्थचेता थे किन्तु आडम्बरों के ढोंग में वे अपना यथेष्ट प्रभाव नहीं डाल पाते थे।

उस दिन ऐसा ही आडम्बर पूर्ण आयोजन होने वाला था, इस कारण भारी हलचल मची हुई थी। आयोजन यह था कि देवशर्म नामक तापस अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ वेणा नदी के जल की सतह पर चलते हुए वहाँ पहुँचने वाला था और जन समुदाय उसका स्वागत करने के लिए वेणा तट पर जा रहा था।

जन समुदाय ने अपनी खुली आँखों से देखा कि देवशर्म आदि सभी तापस जैसे पाँवों से धरती पर चलते हैं, उसी तरह वेणा नदी के जल की सतह पर चलकर आ रहे हैं। उस चमत्कार को देखकर सभी स्तम्भित रह गए- ऐसा महान् तापस जिसके पास ऐसी दैविक शक्ति है। उस के प्रति गहन आस्था का भाव फैल गया और प्रयास तो दूर किसी ने यह जानने का विचार ही नहीं किया कि तापसों की वह शक्ति दैविक है या कुछ और। वे लोग तापसों की अपार भक्ति में संलग्न हो गए। तापसों को भी वे सीधे-सादे लोग खूब पसन्द आए जो अन्न, फल, वस्त्र, धन आदि की जी खोलकर भेंटें चढ़ाने लगे थे। उनकी आँखों में खटक तो रहे थे कुछ वे लोग जो सजग और स्वस्थ चेता थे, लेकिन बहुसंख्यक लोगों के सामने उनके मुँह बन्द हो गए क्योंकि तापसों के उकसाने से उन लोगों को अकारण सताया जाता था। ऐसे लोग तापसों के आचरण के प्रति शंकाशील रहते थे तथा उनके आडम्बर की तह में उतरना चाहते थे किन्तु मन मसोस कर रह जाते थे।

तापस जब आश्वस्त हो गए कि अचलपुर के निवासी उनके अनन्य भक्त हो गए हैं तो उन्होंने वहाँ अपना आश्रम स्थापित कर लिया तथा पर्याप्त से अधिक

भेंटें प्राप्त करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे। कभी-कभी विशेष अवसरों पर तापस वेणा नदी के जल की सतह पर पाँवों से चल कर आते-जाते हुए वहाँ के निवासियों को चमत्कृत करते रहते। बहुसंख्यक लोगों में अन्ध भक्ति का साम्राज्य छा गया था, अतः वे तापसों का कदाचार नहीं देख पाते थे, किन्तु अल्पसंख्यक स्वस्थचेता व्यक्ति उसे देखकर दुःखित होते थे और उससे संघर्ष करने का अवसर खोजते रहते थे।

एक दिन वह अवसर आ भी गया। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आचार्य आर्यसमित अपने शिष्य मण्डल सहित अचलपुर पधारे। तापसों के संकेत पर सामान्यतः वहाँ के निवासी उनके दर्शन-वन्दन हित नहीं गए, किन्तु स्वस्थचेता व्यक्ति अत्यन्त आशा एवं उत्साह के साथ उनकी सेवा में पहुँचे। प्रवचन के उपरान्त वे वहीं ठहरे रहे। एक गंभीर व्यक्ति ने आचार्य की सेवा में निवेदन किया- आचार्य प्रवर, हम आपकी सेवा में हमारे इस नगर की एक ज्वलन्त समस्या प्रस्तुत कर उसका सम्यक् समाधान प्राप्त करना चाहते हैं।

आचार्य ने शान्तभाव से उत्तर दिया- देवानुप्रियों यदि आपकी समस्या का सम्बन्ध सम्यक् धर्म की प्रभावना से है तो उसका समाधान देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।

भगवन्, हमारे इस नगर के निवासी अत्यन्त सरल और भावुक हैं। वे इस समय यहाँ आ बसे तापसों की अंधी भक्ति में अपना भान भूल गए हैं। तापस वेणा नदी के जल की सतह पर चलकर उन्हें चमत्कृत करते रहते हैं और उनसे बहुमूल्य भेंटें प्राप्त करके नाना प्रकार के कदाचार करते रहते हैं। इस परिस्थिति से हम कुछ लोग बहुत दु:खी हैं, जो इस मिथ्या वातावरण को मिटाकर सम्यक् वातावरण का निर्माण करना चाहते हैं। उनके आडम्बर ने अधिकांश लोगों की आँखें बन्द कर रखी हैं। आप कृपया कोई उपाय कीजिए- सबने हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

आपका प्रयोजन शुभ है और तापसों का यह जल चालन प्रयोग कोई दैविक चमत्कार नहीं है, मात्र औषधि प्रयोग है, किन्तु हम श्रमण बिना किसी विशेष धर्म प्रभावना की संभावना के दूसरों के आडम्बरों के झमेले में नहीं रहते हैं- आचार्य ने आत्म संयम के महत्व पर प्रकाश डाला।

किन्तु आचार्य भगवन्, क्या यह विशेष धर्म प्रभावना नहीं होगी कि उस नगर के मिथ्यात्व में फँसे नागरिक आप के शुभ प्रयास से सम्यक्त्व के प्रकाश में आ जाएँ? भटकते हुए एक प्राणी को भी सन्मार्ग पर

लाने के लिए आपका धर्म प्रयास चलता है, फिर यहाँ तो अनेकानेक प्राणियों के उद्धार का प्रश्न है, आप कृपा करके विचार कीजिए- स्वस्थ चेता व्यक्ति विनम्रतापूर्वक फिर बोले।

आचार्य समित गंभीर विचार में पड़ गए- समस्या वास्तव में जन जागरण की थी। लोगों को सही मार्ग मिल जाएगा तो वे अपना भटकाव छोड़ देंगे और यही तो धर्म प्रभावना है। भीतर ही भीतर मानस मंथन करके और निर्णय लेकर आचार्य कहने लगे- भव्यों, आपकी समस्या के विषय में मैंने निर्णय ले लिया है। हमारे श्रमणाचार के लिए मैं समुचित प्रायश्चित ले लूंगा, परन्तु सम्यक्त्व की प्राभाविकता एवं उसके विस्तार के लिए मैं उपाय अवश्य करूंगा। तुम लोग मेरे निर्देश के अनुसार कार्य करो, अचलपुर के लोग अंधकार से निकलकर अवश्य ही प्रकाश के अनुगामी बनेंगे।

परम कृपा है आचार्य देव की- हर्षावेग से वे सब बोले और उनके निर्देश ध्यानपूर्वक सुनने लगे।

वे स्वस्थ चेता व्यक्ति तापसों के आश्रम में पहुँचे और देवशर्म तापस के समक्ष हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे- हम आपकी सेवा में एक प्रार्थना लेकर उपस्थित हुए हैं।

देवशर्म तापस का हृदय खिल उठा- अन्ततः अपने को सजग मानने वाले अचलपुर के ये लोग भी मेरी शरण में आ ही गए हैं। अब तक ये ही मेरे मार्ग के रोड़े बने हुए थे, इनके आत्म समर्पण के बाद अब हम तो सदा इस नगर के लोगों की प्रार्थनाएँ ही सुनते और उन्हें पूरी करते रहेंगे।

यही विश्वास लेकर तो हम आए हैं। हम चाहते हैं कि आज सभी तापस हमारे यहाँ श्रेष्ठ भोजन प्राप्त करें तथा तदनन्तर वेणा नदी के जल की सतह पर चल कर हम लोगों सहित अचलपुर के समस्त लोगों के हृदय पर अपनी विजय की पताका फहरावें। इससे हम सबके संयुक्त कल्याण का मार्ग खुल जाएगा। आप अवश्य कृपा करके हमारे निमंत्रण को अपनी स्वीकृति प्रदान करें।

मुझे प्रसन्नता है कि अन्ततः आप लोगों के हृदय में सद्‌बुद्धि ने प्रवेश कर लिया है। अब हम आपकी प्रार्थना नहीं ठुकराएंगे। हम दोपहर बाद भोजन करने पहुँच जाएंगे और वहीं से वेणा तट पर चलेंगे- देवशर्म ने वस्तुतः प्रसन्नता व्यक्त की।

स्वस्थचेता व्यक्ति चले गए तब देवशर्म ने अपने सभी शिष्यों को बुलाया और उन्हें वह खुशखबरी सुनाई कि अब अचलपुर के कांटों की नोकें टूट गई हैं। वे अब

अधिक निश्चिन्तता के साथ आनन्द करें। फिर वेणा जल पर चलने की बात बताते हुए मुख्य तापस ने वह लेप मंगाया जिसका अपने पाँवों पर वे लेपन करके जल चालन किया करते हैं। अधिक चमत्कार दिखाने की कामना से सभी तापसों ने वह लेप गाढ़ी परत के साथ अपने पाँवों पर लगाया। तब वे अपने पराजित विद्रोहियों के यहाँ भोजन पाने के लिए चले।

तापसों के यथास्थान पहुँचने पर उन सजग व्यक्तियों ने उनका शानदार स्वागत किया तथा उन्हें उपयुक्त आसनों पर बिठाया। फिर प्रत्येक तापस के पाँव पखारने के लिए वे गर्म पानी के पात्र हाथों में लेकर आए और प्रत्येक तापस के पाँव धोने बैठे। इतने में उन्हें रोकते हुए देवशर्म तापस बोला- भाइयों, आप यह क्या कर रहे हैं? अब तो आप हमारे हो गए हैं- हमारे पाँव धोने का जघन्य कार्य हम आपसे कभी नहीं करवाएंगे।

एक गंभीर व्यक्ति आगे आया और विनम्र स्वर में बोला- हे महान् तापस, आपने हमारे हृदय दुखाने वाली ऐसी बात क्यों कही है? आप हमारे मान्य अतिथि हैं और क्या आपके पाँव धोना जघन्य कार्य है? अतिथि के पाँव धोना तो सदा एक पुण्य कार्य माना गया है। आप इस पुण्य लाभ से हमें वंचित क्यों करना चाहते हैं?

देवशर्म की बोलती बन्द हो गई- इस सही बात का क्या गलत जवाब हो सकता है? किन्तु वह अपनी घातक कठिनाई जानकर परेशान हो रहा था। पाँवों पर लगा हुआ लेप ही तो उनका सबसे बड़ा चमत्कार और अचलपुर के लोगों की भक्ति का आधार है। यह लेप ही अगर इन लोगों की भक्ति में धुल गया तो सारे तापस कहीं के नहीं रहेंगे। उन्हें वेणा नदी के जल की सतह पर तो आज चलना ही होगा और तब वे एक-एक करके नदी के अतल जल में डूबते चले जाएंगे और इस तरह उनका कदाचार, आनन्द और यहाँ तक कि अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। अब वे इस संकट की वेला में क्या उपाय करें? देवशर्म की समझ में कुछ नहीं आया। समय की गंभीरता को देखते हुए देवशर्म धीमे और मधुर शब्दों में एक बार बोला- भाइयों, आप तो बुरा मान गए। मेरा पाद प्रक्षालन को जघन्य कार्य कहने का अभिप्राय नहीं था। मैंने तो वैसे आप लोगों के सम्मान की रक्षा के भाव से ही कहा था।

आप महान हैं। हमारा सम्मान तो इसी में है कि हम आप सब तापसों का अपने हाथों पाद प्रक्षालन करके आपको भक्तिपूर्वक भोजन करावें।

उन लोगों को किसी भी अवस्था में तापसों के

पाँवों को पूरी सफाई के साथ धोना ही था, अत: तब बिना देरी किए वे लोग सभी तापसों के पाँव धोने लग गए। गर्म पानी से रगड़-रगड़ कर उन्होंने यत्नपूर्वक सबके पाँव धोए कि लेप का अंश मात्र भी कहीं रह न जाए और फिर श्वेत वस्त्रों से सबके पाँवों को उन्होंने मसल-मसल कर पौंछ भी डाला। तापस अपनी आँखों के सामने अपने विनाश का कार्यक्रम देखते रहे- कुछ बोल तक नहीं सके। ये लोग अनजाने में ही सही, पर उनकी मिट्टी पलीत करने के लिए क्यों उतारू हो रहे हैं- वे निरीह भाव से सोचते रहे।

भोजन अत्यन्त स्वादिष्ट था और व्यंजनों की संख्या भी बहुत अधिक थी। पाँव धुलवा कर तापस भोजन करने बैठे किन्तु एक-एक कौर गले से उतारना उनके लिए दूभर हो गया। किसी तरह भोजन समाप्त किया और तब भारी कदमों से वे सब तापस वेणा तट की ओर चले। उनके पीछे केवल वे सजग व्यक्ति ही नहीं थे, बल्कि अचलपुर के समग्र निवासी भी थे।

समग्र जन समुदाय पुन: एक बार उन तापसों का चमत्कार देखने के लिए परम उत्साहित था, परन्तु आज सारे तापसों के हृदय गौरव प्रदर्शन के सदा रहने वाले उत्साह के स्थान पर अस्तित्व लोप की भयंकर निराशा से ग्रस्त एवं संतप्त थे।

सदा के समान वेणा नदी का चौड़ा पाट अथाह जल राशि से भरा हुआ उग्र वेग से प्रवाहित हो रहा था, किन्तु आज वेणा नदी का वह दृश्य विभिन्न वर्ग के लोगों को विभिन्न प्रकार से प्रतीत हो रहा था।

सामान्य जन समुदाय उस विशाल प्रवाह को आनन्दमग्न होकर देख रहा था कि तापस इसके जल की सतह पर अपने पाँवों से चलेंगे और सबको चमत्कृत करेंगे। कितना आनन्द वे लेंगे इस अपूर्व दृश्य को देखकर !

सजग व्यक्तियों का समूह विश्वस्त था कि नदी के जल पर पाँव रखते ही ये तापस इसके अथाह जल में डूबने लगेंगे और यों इनके आडम्बर की आज पोल खुल जाएगी। आडम्बर मिटेगा तो सम्यक्त्व फैलेगा तथा अचलपुर की समस्त जनता तब गहन अंधकार में से निकल कर सम्यक्त्व के धवल प्रकाश में गमन करेगी। उनके हृदय धर्म प्रभावना की दृष्टि से उत्फुल्ल थे।

और तापस- बेचारे आज वे बेचारे ही हो गए थे। उनके सामने अपने जीवन-मरण का प्रश्न था और प्रश्न क्या प्रतिष्ठाहीन मरण निश्चित था। वे भयभीत, आतंकित और कुण्ठित दिखाई दे रहे थे।

तभी उधर से आचार्य समित एवं कुछ श्रमण भी नदी तट पर आ गए। उनके लिए वेणा नदी का जल

अपने में कुछ विशिष्ट रहस्य समेटे हुए बह रहा था।

जन समुदाय ने तापसों का जयनाद किया और उन्हीं में से एक भक्त प्रमुख ने घोषणा की- अब महान तापस देवशर्म अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ अपनी दैविक शक्ति के प्रभाव से वेणा नदी के जल की सतह पर पाँवों-पाँवों चलेंगे और नदी को पार करके उस पार पहुँचेंगे। सभी पूर्ण भक्तिभाव के साथ इस अलौकिक प्रदर्शन का अवलोकन करें।

इस घोषणा के बाद देवशर्म सहित सभी तापसों के न उठना चाहने वाले पाँव मजबूरी में उठे और तट जल तक पहुँचे। अब क्या होगा- उनकी आँखों के सामने काला अंधकार छा गया। कुछ भी नहीं दिखाई दिया और वे आगे चल पड़े। चले क्या कि नदी के अथाह जल में घुटनों से कमर तक और धीरे-धीरे सिर तक डूबकर उठने-गिरने लगे। तब वे सब जीवन रक्षा की कर्णभेदी गुहार कर उठे- किन्तु कौन साहस करता उस अथाह जल में से पाँच सौ तापसों को खींच कर बाहर निकाल लाने का? जन समुदाय का भाव आस्था से आश्चर्य की ओर मुड़ा और आश्चर्य से अश्रद्धा में डूबने लगा- कहीं कहीं वह घृणा और जुगुप्सा का रूप ले बैठा।

पाँच सौ जीवन मृत्यु के मुख में समा रहे हों,

तब दया धर्म के प्रवर्तक आचार्य और श्रमण शान्त कैसे खड़े रहते? आचार्य समित आगे बढ़े और उच्च स्वर में बोले- वेण्णे, अपने जल प्रवाह को एकदम संकुचित कर लो।

और उपस्थित जनों ने दाँतों तले अंगुली दबा कर देखा कि वेणा नदी का प्रवाह एक दम सिकुड़ गया है और एक नाली के रूप में बदल गया है। सभी तापस सकुशल बाहर निकल आए।

देवशर्म अपने सभी शिष्यों सहित आचार्य समित के चरणों में गिर पड़ा और पश्चाताप के स्वर में बोला- भगवन्, हमने बहुत कदाचार किया, आपने हमारी आँखें खोल दी हैं। हम सब आपके समीप दीक्षित होना चाहते हैं और अचलपुर के समस्त निवासी आचार्य की भक्ति में नत-मस्तक हो गए।

आचार्य ने कहा- वेण्णे, पूर्ववत् हो जाओ और वेणानदी पूर्ववत् बहने लगी उस अभूतपूर्व दृश्य को अपने में समेटकर।

स्त्रोत- आवश्यक निर्युक्ति- निशीथ चूर्णि भाष्य।

सार- जागृति महामंत्र है।

❖ ❖ ❖

कमठ का विनाशपूर्ण वैर

देवर जी, घर में भीतर ही भीतर क्या काण्ड हो रहा है, कुछ जानते हैं? वरुणा ने अपने देवर मरूभूति को एकान्त में पूछा।

नहीं तो, मैं तो कुछ भी नहीं जानता- निर्दोष सरलता से मरूभूति ने उत्तर दिया।

इतने भोलेपन से दुनिया नहीं चला करती- उलाहना दिया भाभी ने।

विश्वभूति नामक राजपुरोहित के दो पुत्र थे- बड़ा कमठ और छोटा मरूभूति। कमठ की पत्नी का नाम था वरुणा और मरूभूति की पत्नी का नाम था वसुन्धरा। दोनों भाइयों के स्वभाव तथा आचरण में पूर्व-पश्चिम का अन्तर था। जहाँ कमठ धूर्त, लम्पट, कामी और क्रोधी था, वहाँ मरूभूति एकदम सरल, विनयी, दयाभावी तथा सत्संगी था। मरूभूति की पत्नी भी उससे विपरीत स्वभावी थी- झूठी, चालक और

कामांध। वह अतीव रूपवती भी थी, पर वरुणा दक्ष, चतुर तथा सतर्क थी। इसी सतर्कता के फलस्वरूप घर के घृणित काण्ड को वह जान पाई थी और उसी को ठीक करने के लिए वह अपने देवर को सतर्क कर देना चाहती थी। किन्तु मरूभूति इतना भोला था कि उसे उस काण्ड की भनक तक नहीं थी।

भाभी, मैं दुनिया चला ही कहाँ रहा हूँ, दुनिया ही मुझे चला रही है। लेकिन तुम वह काण्ड तो बताओ- मरूभूति ने जानना चाहा।

देवर जी, पहले एक यथार्थ मैं आप को बता दूँ कि किसी स्त्री का पति यदि किसी अन्य स्त्री के साथ पापाचार करता हो तो वह उसे किसी भी प्रकार सह नहीं सकती है।

अरे भाभी, यह तो सही ही है। क्या कोई भी पति यह सह सकता है कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष के साथ पापाचार करे?

तुम ठीक कहते हो- ये दोनों ही स्थितियाँ सह्य नहीं हैं, पर ऐसी असह्य स्थितियाँ अपने ही घर में चल रही हैं।

ऐसा कहकर तुम क्या भेद खोलना चाहती हो? मैं कुछ समझा नहीं।

वही तो मैं तुम्हें समझाना चाहती हूँ, पर अपने ही पति के पापाचार को कहते हुए मेरी जीभ लड़खड़ा रही है।

क्या भ्राता कमठ के विषय में कुछ कह रही हो ? तब तो तुम्हारा भ्रम ही है। कमठ क्रोधी अवश्य है, पर पापाचारी कत्तई नहीं है- यह मेरा विश्वास है।

तभी तो मैंने कहा कि तुम बहुत ही भोले हो। पत्नी होकर भी मुझे कहना पड़ रहा है कि तुम्हारे भ्राता का पापाचार चल रहा है तुम्हारी ही पत्नी के साथ।

भाभी, यह तो तुम्हारा एकदम मिथ्या कथन है। मेरी पत्नी कदापि ऐसी नहीं हो सकती, कितना प्यार करती है वह मुझे? और मुझे भी वह कितनी प्यारी है? उसके रूप की छाया में ही तो मैं जी पा रहा हूँ। अवश्य ही तुम्हारा मन किसी कारण से भ्रमित हो गया है।

यह भ्रम नहीं है, नंगा सच है- ऐसा सच जिसे देखकर भी मानना कठिन होता है। वैसी कठिनाई में फँसकर ही मैं तुमसे उससे पार पड़ने का मार्ग खोजना चाहती हूँ कि तुम भ्रम में न पड़े रहो। इस भ्रम के खतरनाक परिणाम हो सकते हैं, गहराई से सोच लो- वरुणा ने मरूभूति के मन को झकझोर कर रख दिया।

मेरी प्रिय वसुन्धरा ऐसी हो सकती है कि वह

पिता तुल्य भ्राता के साथ काम सेवन करे- इसकी तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता हूँ।

अपनी खुली आँखों से न देखती तो क्या मैं अपने ही पति पर लांछन लगाने का साहस कर पाती, जो पात्र-अपात्र को देखे बिना ही कामांध बना हुआ है?

यह घर का काण्ड तो बहुत ही गंभीर है। मुझे तो कुछ नहीं सूझ रहा कि क्या करूँ?

कुछ भी करो देवर जी लेकिन हिम्मत के साथ कुछ ऐसा करो कि यह पापाचार बन्द हो सके, वरना मैं या तो अपनी आँखें फोड़ लूंगी या जहर खाकर मर जाऊंगी। मैं इस कुकृत्य को अब देख नहीं सकती- जैसे भाभी ने अन्तिम वाक्य कह दिया। मरूभूति गहरे विचार में पड़ गया कि ऐसी विकट परिस्थिति का वह सामना कैसे करे? वह बोला- पहले मैं मामले की सत्यता जाँच कर लूँ। फिर कुछ करूंगा।

आओ मेरे परम प्रिय, आज तो पूरी तरह निश्चिन्त होकर मुझे अपने आलिंगन में बांध लो। तुम्हारी भुजाओं में बंधकर मुझे स्वर्ग जैसा सुख मिलता है- कमठ के आते ही वसुन्धरा उसके गले से झूल गई।

आखिर आज निश्चिन्तता किस बात की है? क्या मरूभूति यहाँ नहीं है?

तभी तो कह रही हूँ। उस मूर्ख को तो जो मैं कहती हूँ, वही वफादार की तरह मान लेता है। रात से ही मेरा मन तुम्हारे लिए बहुत व्याकुल हो रहा था और सुबह ही वह बोला कि किसी काम से पास के गाँव में जा रहा है- दो-तीन दिन में लौटेगा। मैं तुम्हारे सहवास का आनन्द चाहती थी और वह मुझे बिना मांगे ही मिल गया। है न मेरा पति पूरा मूर्ख, जिसके मन में मेरे प्रति शंका तक उत्पन्न नहीं होती? वसुन्धरा ने कहा और खुद ही ठठाकर हँस पड़ी।

कमठ ने वसुन्धरा को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में बांध लिया और दोनों पापाचारी मुक्त पापाचार में लिप्त हो गए।

तभी यम के समान उनके सिर पर चढ़ आया मरूभूति। दोनों कामांधों को तनिक भी शंका नहीं थी कि उनके सिर पर खड़ा हुआ पुरुष मरूभूति हो सकता है। दोनों ने अपनी आँखें मली, फिर देखा और दोनों चौंक कर खड़े हो गए, पापाचार का नंगा सच खोलकर- मरूभूति स्तम्भित रह गया।

दृश्याघात से संभल कर मरूभूति पहले बरसा अपनी विश्वासघातिनी पत्नी पर- अरी दुष्टा, तुम ऐसी कलंकिनी निकलोगी, यह मैंने कभी नहीं सोचा। कितना

झूठा निकला तुम्हारा प्यार, जिस पर मैं अथाह विश्वास करता रहा?

फिर अपने भ्राता की ओर मुड़ा और बोला- आप मेरे बड़े भाई हो और वसुन्धरा के लिए पिता समान। एक पिता अपनी पुत्री के साथ व्यभिचार करे, इससे अधिक कलंक की क्या बात हो सकती है? आपको लज्जित होकर अब तो ऐसे कुकर्म से बचना चाहिए- मरूभूति कह तो गया, पर अपने भाई की लाल-लाल आँखों को देखकर डर भी गया।

कमठ ने चलते हुए मरूभूति को एक धक्का लगाया और कहा- ज्यादा बढ़-बढ़ कर बात न कर। एक दिन तुझे भी देख लूंगा।

मरूभूति सचमुच ही भयभीत हो गया तथा अपना अभियोग राजा मरविन्द के पास ले गया। राजा कमठ पर बुरी तरह से क्रुद्ध हुआ और उसने उसे नगर-निकाले का दण्ड दे दिया।

कमठ नगर से निकल कर कुछ समय तो उद्देश्यहीन सा इधर-उधर भटका, फिर वन में जाकर तापस बन गया और अपने चारों ओर आग जलाकर आतापना तप करने लगा। आस पास के गाँवों में समाचार फैल गया कि कोई बहुत बड़ा तपस्वी प्रकट हुआ है और

धीरे-धीरे कमठ की ख्याति और भक्ति बढ़ती चली गई।

यह संवाद मरूभूति तक भी पहुँचा। उस घटना को बहुत समय बीत चुका था। उसने सोचा कि बड़े भ्राता ने अपने पापाचार का सच्चे मन से प्रायश्चित कर लिया दिखता है, क्योंकि उनके तापस बनने का एक ही कारण हो सकता है- किए हुए पापाचार के प्रति ग्लानि और पश्चाताप से जलता हुआ मन। इसका अर्थ है बड़े भ्राता ने अपने आपको निष्पाप बना लिया है और अब वे विख्यात तापस हो गए हैं। मुझे भी जाकर उनका दर्शन करना चाहिए- यह सोचकर मरूभूति उस वन में पहुँचा- जहाँ कमठ पंचाग्नि ताप का आडम्बर फैलाए अनेक लोगों की सेवा एवं भेंट का आनन्द ले रहा था।

मरूभूति ने वहाँ पहुँच कर नम्रता से निवेदन किया- हे तपस्वी भ्राता, मैं आपसे क्षमा मांगने आया हूँ अपने विरोधी व्यवहार के लिए। आप अग्नि तप कर निष्पाप हो गए हैं तो मुझे भी क्षमा करके निष्पाप बना दीजिए।

कमठ ने दृष्टि ऊपर उठा कर देखा अपने भाई मरूभूति को और उसकी आँखों में खून उतर आया- विनाशपूर्ण वैर जाग उठा- इस दुष्ट ने ही उसके रंग में भंग किया था और इसे ही उसने देख लेने की धमकी

दी थी- वह देख लेने का समय आ गया है। प्रतिशोध की आग ठंडी कर ही देनी चाहिए। उसने यह नहीं सोचा कि प्रतिशोध की आग कभी ठंडी नहीं होती है- प्रतिशोध लेने से प्रतिशोध की आग फैलती ही जाती है।

भ्रातावर, क्षमा कर दीजिए अपने छोटे भाई को कहते हुए मरूभूति ने अपने भ्राता के पाँवों में अपना माथा झुका दिया, परन्तु कमठ के हाथ उसके माथे की ओर आशीर्वाद देने के लिए नहीं बढ़े। उन हाथों ने त्वरित गति से पास पड़ा एक भारी शिलाखण्ड उठाया और उसे बलपूर्वक दे मारा मरूभूति के मस्तक पर। प्रहार इतना तीव्र था कि मरूभूति का सिर तत्क्षण फट गया, लहू का फव्वारा उछला और उसका प्राणान्त हो गया।

क्षमा के अभिलाषी मरूभूति को उसके भ्राता कमठ ने दिया मृत्यु का दण्ड और अपने हृदय में उमड़-घुमड़ रहे वैर को एक प्रचण्ड तूफान का रूप दे दिया- ऐसे तूफान का जो जाने कब तक चले और कब थमे- इस जन्म तक या जन्म-जन्मान्तर तक?

वास्तविकता यह है कि कमठ का विनाशपूर्ण वैर उसी जन्म तक ही नहीं, अनेक जन्मों तक चलता रहा- जैसा कि वह चाहता था अपने छोटे भाई मरूभूति का लहू बहाकर भी शान्त नहीं हुआ। जन्म पर जन्म

व्यतीत होते रहे और दुर्योग ऐसा बैठता रहा कि कमठ किसी न किसी रूप में मरूभूति के प्रत्येक रूप को सताता रहा- वैर निकालने की कड़ी को चलाता रहा।

और मरूभूति का जीव कई जन्मों के बाद जन्मा वाराणसी के महाराजा विश्वसेन के राजप्रासाद में वामा माता की कुक्षि से। गर्भधारण के समय महारानी वामा ने चौदह महास्वप्न देखे और उससे अनुमान लगा कि उसकी कुक्षि से तीर्थंकर पुत्र का जन्म होगा। बालक का नाम पार्श्वकुमार रखा गया।

प्रारंभ से ही पार्श्वकुमार की प्रतिभा विलक्षण थी- प्रत्येक तत्व को गूढ़ता से समझने की जिज्ञासा, गहरी चेतना शक्ति तथा अपार दया की भावना उनके हृदय में लहरें लेती थी। दृष्टि भी उनकी सतर्क थी तथा उसमें अद्‌भुत ओज था। वे सत्य के पालक और प्रशंसक थे, किन्तु साथ ही किंचित् मात्र आडम्बर या पाखण्ड के प्रति भी वे सजग हो जाया करते थे और उसे मिटा देने के लिए कटिबद्ध। मायाचार को वे परम अधर्म मानते थे। यौवन की देहरी पर उन्होंने अपना पाँव रखा ही था किन्तु उस अल्पवय के बावजूद सभी के बीच में लोकप्रिय भी थे तो लोग उनसे आतंकित भी कि किसी के भी पाखण्ड को वे आसानी से सहेंगे नहीं।

उधर कमठ फिर से कमठ ही बना था, फिर एक तापस- वही पंचाग्नि ताप और आडम्बर से भोले लोगों को प्रभावित करना। पाखण्ड की प्रतिमूर्ति था वह, पर तापस के नाम से विख्यात भी। एक बार वाराणसी में आकर उसने अपना आसन जमाया- लपलपाती हुई लपटों के बीच बैठकर तपस्या का उसका नाटक बहुत असरदार साबित हुआ। समूह के समूह सेवा पूजा में जाने लगे।

एक ही दिशा में लगातार जाते हुए जन प्रवाह को देखकर पार्श्वकुमार को भी आश्चर्य हुआ- पूछा और पता लगाया कि क्या बात है? जब उन्हें यह विदित हुआ कि एक ख्यातिप्राप्त तापस पंचाग्नि ताप ले रहा और सारे लोग उसी की सेवा पूजा में चले जा रहे हैं तो उनके मन में सतर्कता की बिजली कौंधी- जहाँ सामान्य जन अपनी भक्ति के फूल बिखेरते हैं, वहाँ अधिकांशतः मूल में पाखण्ड का ही प्रभाव रहता है। उन्होंने भी तापस के पास जाने का मन बनाया। एक अश्व पर आरूढ़ होकर पार्श्वकुमार भी उसी दिशा में चल पड़े, जिस दिशा में जन समूह चले जा रहे थे।

लोगों ने उन्हें बताया- यही है कमठ तापस। उन्होंने पारखी दृष्टि घुमाई उस तापस पर और उसके

चारों ओर के वातावरण पर। आग की ऊँची उठती हुई लपटों के बीच बैठा था वह तापस, जिसकी मुखाकृति पर तेज नहीं, क्रूर क्रोध झलक रहा था। वह बीच-बीच में पास पड़े लक्कड़ उठाता और उन्हें आग में झौंक देता, ताकि लपटें मन्द न हों।

पार्श्वकुमार को वह सब देखकर अच्छा नहीं लगा- इतना ढोंग और पाखण्ड क्यों? केवल सामान्य जन को भ्रमित एवं प्रभावित करने के लिए? लेकिन इस तरह प्रभावित करना तो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ही हो सकता है, प्रभावित होने वालों के कल्याण के लिए तो कत्तई नहीं। सच्चे प्रभाव का तो लक्षण यह होता है कि उसकी दृष्टि में दया, करुणा और हित भावना हो, लेकिन इस तापस की दृष्टि में तो ऐसा कुछ भी नहीं है बल्कि इस के विपरीत क्रूरता और रुद्रता दिखाई दे रही है- इसे गहराई से देखना चाहिए। वे कुछ पास में गए और जैसे वह उनके पास जाने से चिढ़ गया हो। उसी झौंक में उसने एक बड़ा-सा लक्कड़ तेजी से आग में झौंका और पार्श्वकुमार को उसमें पाखण्ड की जड़ दिखाई दे गई।

उस बड़े लक्कड़ में एक नाग और उसकी नागिन दुबके हुए बैठे थे। पार्श्वकुमार आगे बढ़े और

बोले- अरे तापस, तेरे हृदय में करुणा नहीं, यह हिंसा का ताण्डव क्यों फैलाए बैठा है?

कौन है तू? अभी तक इस तापस के तेज को पहचाना नहीं है तूने? पल भर में भस्म कर दूंगा- कमठ ने ललकारा।

हाँ, भस्म तो तुम कर ही रहे हो अबोले प्राणियों को। तब क्या इसी को तपस्या कहते हो तुम? दयाहीन हिंसा को तपस्या का नाम देते हुए लजाते नहीं- लताड़ते हुए कुमार ने कहा।

इस विवाद में लोग काफी पास में आ गए और सारे मामले को समझने लगे। जब उनके अपने राजकुमार इस तरह तापस को फटकार रहे हैं तो अवश्य कोई गंभीर बात होगी।

अनजाने में ही कमठ के मन में पार्श्वकुमार के प्रति भारी वैर उमड़ आया और वह दहाड़कर बोला- असत्य आरोप न लगाओ, अभी तुम बालक हो, साधना की गूढ़ता समझने में अक्षम। मेरे सामने से चले ही जाओ।

पार्श्वकुमार ने आगे बढ़कर उस बड़े लक्कड़ को आग से बाहर निकलवाया और उसमें से चलते हुए नाग-नागिन को, फिर तापस से कहा- अब तो देख लिया न अपनी साधना का आधार, जो हिंसा और पाखण्ड पर खड़ा हुआ है।

लोगों ने यह देखा तो वे उत्तेजित हो उठे। उन्होंने दयाहीन तापस को धिक्कारा। उस अपमान से कमठ वैरपूर्ण आँखों से पार्श्वकुमार को देखता हुआ वन की ओर भाग गया। मरणोन्मुख नाग-नागिन को पार्श्वकुमार ने नवकार मंत्र की शरण दी ताकि उनकी सद्भाव पूर्वक सुगति हो।

लेकिन कमठ वैरभाव की आग में बुरी तरह छटपटाने लगा- पार्श्वकुमार का प्राणान्त कर दे, पर कैसे करे? वह तो एक राजकुमार है। अपनी उस विवशता में उस की छटपटाहट बढ़ती गई। अस्वस्थ मन से उसका तन अस्वस्थ हुआ और दोनों की अस्वस्थता भीषण रूप से बढ़ती गई, जिससे मृत्यु ने ही उसे मुक्ति दिलाई। मरकर वह मेघमाली नामका असुर बना।

क्या कमठ का विनाशपूर्ण वैर तब तो शान्त हो गया? वैरभाव को हृदय से समूल निकाले बिना वैर कभी शान्त नहीं होता और जब तक वैर भाव प्रबल बना रहता है, जीव का जीवन कभी भी सुधर नहीं पाता। कमठ ने वैर को निकाला नहीं तो मेघमाली असुर उससे रहित कैसे बन जाता?

पार्श्वकुमार ने विवाह किया, राज्य किया और तब दीक्षा अंगीकार की। वे भगवान पार्श्वनाथ हो गए।

एक बार प्रभु पार्श्व वन में एक वट वृक्ष के नीचे कार्योत्सर्ग में तल्लीन होकर साधनारत् थे। मेघमाली असुर आकाश मार्ग से होकर उधर से जा रहा था, ज्योंही उसने भगवान पार्श्व को ध्यानस्थ देखा तो उसका वैर भाव उभर आया। वह क्रोध से तिलमिला उठा और उसके मन में आया कि वह अपने वैर के इस पात्र का प्राणान्त कर दे। इसको समझ में आ जाए कि कौन था वह कमठ, जिसको नीचा दिखाने का इसने दुष्प्रयत्न किया था।

सिंह का रूप धर कर उसने गर्जना की, हाथी बनकर चिंघाड़ें मारी- पार्श्व प्रभु को आकाश में उछाल कर भूमि पर पटका, जहरीला बिच्छु बनकर डंक मारे और जब वे नहीं घबराए तो वह प्रलय काल जैसी वर्षा करने लगा- प्रभु की नासिका तक पानी चढ़ आया। नाग नागिन मरकर इन्द्र-इन्द्राणी बने थे, उनका ध्यान प्रभु की ओर गया और उसकी माया टूट गई। मेघमाली ने तब पहचाना प्रभु के पावन स्वरूप को और अपने मन का सारा वैर भाव निकाल फैंका- समभाव की विजय हुई।

स्त्रोत- त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र।

सार- सदा समभाव रखें।

❖ ❖ ❖

परलोक नहीं तो संयम क्यों?

यदि परलोक का ही अस्तित्व नहीं है- स्वर्ग से आकर कोई पुनर्जन्म के सत्य को सिद्ध नहीं करता तो संयम का व्रत लिए रखने की क्या आवश्यकता है? क्यों मन का निरोध किया जाए और संसार के सुखों से वंचित रहा जाए? यह तो एक खेदजनक स्थिति हो गई है- आचार्य आर्याषाढ़ की विचारधारा विपरीत दिशा में बह चली।

आचार्य आर्याषाढ़ दीर्घ संयमव्रती, बहुश्रुत एवं विशाल शिष्य मण्डल युक्त थे। वे वत्सदेश के प्रधान धर्मगुरु माने जाते थे। उनके गच्छ में जब कोई साधु समाधि मरण स्वीकार करता तो पहले वे उससे यह अवश्य कहते थे कि मरणोपरान्त देवगति में जाने पर वह अवश्य यहाँ आकर उन्हें दर्शन दे। उनके शिष्य संयम और तप के आचरण में उच्च कोटि के थे क्योंकि वे उनकी भावशुद्धि के विषय में पूर्ण सजग रहा करते थे।

एक बार उनके एक परम प्रिय शिष्य ने समाधि

मरण स्वीकार किया। अब तक चूंकि उनका कोई शिष्य मरणोपरान्त देवलोक से उन्हें दर्शन देने नहीं आया था, अतः वे निराशाग्रस्त थे। उन्होंने अपने उस शिष्य को वापिस आकर दर्शन देने की बात पर पूरा बल दिया। शिष्य ने भी उनकी बात पक्की गाँठ बांध ली कि वह यदि देवलोक में गया तो गुरु की इच्छा अवश्य पूरी करेगा।

आचार्य का वह शिष्य जब मरणोपरान्त देवलोक में गया तो उसे गुरु की बात याद थी। किन्तु देवलोक का एक पल भी तो मध्यलोक के समय से कई गुना अधिक होता है, अतः उसके लौटकर गुरु से मिलने में यहाँ का काफी समय निकल गया। जब परम प्रिय शिष्य भी लौटकर नहीं आया तो आचार्य की आशा का बांध टूट गया और उनके मन ने निश्चय कर लिया कि परलोक या पुर्नजन्म का अस्तित्व ही नहीं है और इस कारण यह संयम- यह कष्ट सब व्यर्थ हैं। उन्हें यह अपनी भयंकर भूल लगी कि उन्होंने संसार के मनोहर एवं सुखद भोगों का त्याग किया। जो हुआ सो हुआ, अब तो जितना जीवन शेष रहा है उसमें तो इन्द्रिय सुख का आनन्द लिया ही जाए- यह सोचकर वे चुपचाप अपने उपाश्रय से निकल गए।

जब देव बने शिष्य ने अपने अवधिज्ञान के

प्रयोग से अपने गुरु की अवस्था देखी तो वह दु:खी हो गया- ज्ञान के प्रकाश स्तम्भ रूप उसके गुरु निराशाग्रस्त होकर अज्ञान के अंधकार में चले गए हैं। तब उसने दर्शन देने की अपेक्षा यही उचित समझा कि गुरु के भटके हुए चित्त को संयम में पुन: स्थिर बनाया जाए।

आर्याषाढ़ एकांकी वन प्रदेश में चले जा रहे थे यह सोचते हुए कि अब तो संसार के समस्त सुखों का जी भर कर आनन्द उठाया जाए।

और आनन्द उन्हें सामने दिखाई दिया- एक दिव्य नाटक खेला जा रहा था। नाटक के पात्रों का सौन्दर्य देखते ही बनता था और उनकी भंगिमाएँ तो मन को काय-मोह के महासागर में डुबो देने वाली थी। उनके कर्ण और नेत्र बरबस उधर मुड़ गए और स्थिर हो गए। वे वह नाटक देखते रहे- देखते रहे। उन्हें ध्यान ही नहीं आया कि कितना समय बीत गया- न उन्हें भूख लगी न प्यास और उन्हें शीत-ताप का भी कोई अनुभव नहीं हुआ।

किन्तु जब अचानक नाटक समाप्त हो गया और समाप्त क्या, सम्पूर्ण दृश्यावली का लोप हो गया तो वे बौखला उठे। फिर मन को सांत्वना देकर वे आगे चले कि भाग्य से ऐसा मनमोहक नाटक जितने समय के लिए भी देखने को मिला वही उत्तम। कुछ दूरी तक वे गए

होंगे कि मार्ग पर उन्हें एक बालक मिला, दिव्य रत्नाभूषणों से लदा हुआ। देखते ही वे आभूषण लूट लेने की उनकी प्रबल इच्छा हो आई क्योंकि भोगेच्छा पूर्ति के लिए धन तो चाहिए ही। उन्होंने बालक का गला पकड़ लिया। बालक रोते हुए बोला- मेरा नाम पृथ्वीकायिक है, मैं तो छः काया के रक्षक जानकर आपकी शरण में आया हूँ कि इस भयंकर अटवी में आततायियों से निश्चिन्त हो जाऊँ और आप ही मुझे मार डालने पर उतारू हैं। ऐसा तो न कीजिए। शरणागत की रक्षा तो आपका धर्म है।

आर्याषाढ़ को तब धर्म का ध्यान कहाँ रहा था? वे उसका गला मरोड़ने लगे, तभी बालक बोला- अगर मुझे मार ही डालना है तो मुझसे एक कहानी तो सुन लीजिए।

तब वह बालक कहानी सुनाने लगा- किसी गाँव में एक कुम्हार रहता था। मिट्टी खोदते हुए किनारे की मिट्टी उस पर गिर पड़ी। वह बोला- जिसकी कृपा से मैं देवों को उपहार और याचकों को भिक्षा देता हूँ तथा अपने परिवार का पोषण करता हूँ वही मिट्टी पृथ्वी मुझ पर आक्रमण कर रही है और शरणदाता ही भयदाता हो रही है। क्या आप भी ऐसा ही नहीं सोच रहे हैं? आप विचार कीजिए और मुझे न मारिए।

आर्याषाढ़ ने कोई विचार नहीं किया। बालक

को मार कर उसके आभूषण अपने पात्र में भर लिए। फिर एक बालक मिला वैसे ही आभूषणों से लदा हुआ। उसे भी वे मारने लगे तब उसने भी कहानी सुनाई- मेरा नाम अप्कायिक (जल) है और मैं आपकी शरण में हूँ। कहानी यह है कि एक गाँव में पाटल नाम का चारण रहता था। उसे श्रेष्ठ कथाएँ और उक्तियाँ याद थी। एक बार वह गंगा पार करते हुए उसके पूर में बह गया। तट पर खड़े लोग उसे देखकर बोले- देखो बहुश्रुत चारण को गंगा बहाकर ले जा रही है, पर ओ चारण, बहते हुए भी कोई उक्ति तो सुना दो। पाटल बोला- जिससे बीज उगते हैं और जिसके आधार पर किसान जीवित रहता है उसी में गिरकर मैं मर रहा हूँ। बालक ने तब पूछा- क्या आप भी शरणदाता से भयदाता नहीं हो गए हैं? आचार्य ने कुछ नहीं सुना और उसे मारकर उसके आभूषण भी अपने पात्र में भर लिए।

आगे बढ़ने पर उन्हें चौथा बालक मिला वैसे ही अमूल्य आभूषण धारण किए हुए। उसे भी आचार्य मारने लगे तो उसने कहा- मैं वायुकायिक (हवा) हूँ और आप मेरे शरणदाता हैं। मेरी कहानी सुनिए- एक युवा पुरुष बहुत बलवान था, पर धीरे-धीरे उसका शरीर मोटा होता गया और वह वातरोगी बन गया। उसे देख

किसी ने पूछा- किस ने ऐसा किया कि पहले फुर्ती से उछालते-कूदते थे और अब लकड़ी के सहारे से चलते हो? वह बोला- जो हवा जेठ और आषाढ़ में सुख देती थी वहीं हवा अब मुझे दुःख देने लगी है। शरण देने वाली ही भय देने वाली हो गई है। अतः आप मुझे भयभीत न करें। पर आचार्य नहीं माने, उसे मारकर उसके आभूषण भी छीन लिये।

फिर आचार्य को वैसे ही आभूषणों से लदा हुआ पाँचवा बालक मिला, उसने भी पुकार की- मैं वनस्पतिकायिक (पेड़ पौधे) हूँ। मुझे शरण देकर अब भयभीत न करें। उसने भी कहानी सुनाई- फल-फूलों से लदे किसी वृक्ष पर कई पक्षी रहते थे। उस वृक्ष को शरण मानकर वे निश्चित थे। कुछ दिनों बाद उस वृक्ष के पास में एक बेल उग आई जो वृक्ष के तने को लपेटती हुई ऊपर तक चढ़ गई। एक दिन उसी बेल के सहारे एक सर्प वृक्ष पर चढ़ गया और पक्षियों के बच्चों को खा गया। पक्षी विलाप करते हुए कहने लगे- आज तक हम इस वृक्ष पर चिन्ता रहित होकर रहते थे, अब वही वृक्ष हमारे लिए भयदाता हो गया है। फिर भी आर्याषाढ़ का मन जागा नहीं, उन्होंने उसे मारकर उसके आभूषण भी अपने पात्र में भर लिए।

छठा बालक मिला त्रसकायिक। उसे भी वे

मारने लगे, उसने भी कहानी सुनाई- एक राजा बड़ा दुष्ट था। वह अपने नगर में अपने ही आदमियों से चोरियाँ करवाता था और नागरिकों को सताता था। उसका पुरोहित भी लोगों से मार-पीट करता था। लोग दु:खी होकर आपस में कहने लगे- यहाँ का राजा स्वयं चोर है और पुरोहित जल्लाद, ऐसे नगर को छोड़ देना चाहिए जो शरणदाता से भयदाता बन गया है। आचार्य ने उस कहानी के रहस्य को भी हृदयंगम नहीं किया तथा बालक को मारकर उसके आभूषण भी लूट लिये।

छ:हों बालकों के आभूषणों से आर्याषाढ़ के पात्र भर गए। वे उन्हें कठिनता से उठाए हुए आगे चले- उनमें छ: कायों की हत्या का बोझ जो था। व्रतपतित आचार्य आगे जा रहे थे तो मार्ग में एक अतीव सुन्दरी साध्वी उन्हें मिली। वह भी अमूल्य दिव्याभूषणों से लदी हुई थी। उसे इस तरह देखकर आचार्य का रोष उमड़ आया, वे आँखें लाल करके बोले- एक ओर तो साध्वी बनी हो और दूसरी ओर ऐसा कामुक शृंगार करके तुम कहाँ से आई हो? धर्म का इस प्रकार उपहास करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती?

साध्वी ने भी उनसे बढ़कर क्रोध दिखाते हुए कहा- अरे आचार्य, राई जितना दूसरे का दोष तो तुम्हें

दिखाई दे गया और पहाड़ जितना अपना दोष तुम्हें दिखाई नहीं देता- मेरे से तो तुम्हें कई गुना अधिक लज्जा आनी चाहिए। दूसरों को उपदेश देने से पहले स्वयं लज्जा का अनुभव करो। मैं तुम्हारी झोली के पात्र देखना चाहती हूँ कि उनमें क्या भरा है?

आचार्य उस फटकार के आगे कुछ नहीं बोले और तेजी से आगे बढ़ गए। सामने से एक राजा अपनी सेना के साथ आ रहा था। मुनि को देखकर वह हाथी से नीचे उतरा, उसने वन्दन करके आग्रह किया- मेरे साथ प्रासुक और ऐषणीय आहार है, उसे भिक्षा में ग्रहण करके मुझे उपकृत करें।

राजन्, मेरे पास पर्याप्त आहार है, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है- कहकर आचार्य तेजी से आगे बढ़ने लगे, किन्तु राजा ने उनका मार्ग रोक लिया और झोली खींचकर पात्र में आहार डालने का प्रयास किया। खींचा-तानी में झोली खुल गई और पात्र नीचे गिरकर बिखर गए। यह क्या? मुनि के पात्रों में रत्नों के आभूषण, और वे भी इतनी मात्रा में? राजा कुपित हो उठा, मुनि को फटकारते हुए वह कहने लगा- अरे दुष्ट, तू मुनि है और तूने मेरे छः पुत्रों को मारकर मेरे ही रत्नाभूषण अपने पात्रों में भर रखे हैं। धिक्कार है तुझे।

मेरे पुत्रों का हत्यारा, तू अब अपना जीवन बचा नहीं सकेगा।

राजा की धमकी सुनकर आचार्य थर-थर कांपने लगे- जो मैंने मारे वे इसी के पुत्र थे, अब यह मुझे अवश्य मरवा डालेगा। जिन भोगों की लालसा लेकर मैंने संयम छोड़ा और संसार में आनन्द लूटने की कामना की, वह जीवन ही अब नहीं बचेगा- मैंने कैसा दुष्कर्म कर डाला? आर्याषाढ़ घोर पश्चाताप की आग में जलने लगे।

जब देव को इस तथ्य का अनुभव हो गया कि उसके गुरु का भटका हुआ चित्त पश्चाताप से तपकर पुनः संयम मार्ग में स्थिर हो गया है, तब उसने अपनी विकुर्वणा की सारी माया समेट ली और स्वयं देवरूप में अनुपम कान्ति चारों ओर प्रसारित करते हुए आचार्य आर्याषाढ़ के सम्मुख प्रकट हो गया।

आचार्य के आश्चर्य का पार नहीं रहा कि न वहाँ राजा था और न उसकी सेना। उनके पात्रों में भरे हुए वे आभूषण भी वहाँ नहीं थे। वे तो नितान्त एकांकी उस वन प्रदेश में खड़े हुए चिन्तन मग्न थे। अपनी करनी पर पछताते हुए अपने आप उनके नेत्र बन्द हो गए थे और संयम में पुनः स्थिरता ग्रहण कर लेने के बाद ज्योंही उन्होंने अपने नेत्र खोले कि सारा दृश्य ही विलीन हो गया, जैसे वह सारी हकीकत न होकर कोई देवमाया हो।

और संभवतः देवमाया ही थी- उनके मन ने कहा। तभी तो यह देव भी प्रकट हुआ है। वे विस्फारित नेत्रों से उस देव और उसकी अनुपम कान्ति को निरखने लगे। लेकिन यह क्या? यह देव तो उन्हें ही प्रणाम कर रहा है- वे पतित से इतने महान कहाँ हो गए कि एक देव उन्हें प्रणाम करे- उनका ऐसा आदर करे? आचार्य का आश्चर्य शतगुणित हो गया। वे उस तेजोमय देव की ओर देखते रहे, बोल कुछ नहीं पाए।

वह देव ही बोला- आचार्य भगवन्, क्या आपने मुझे पहचाना?

आचार्य ने अस्वीकृति में अपना मस्तक हिलाया और कहा- मैं भला किसी देव को कहाँ से पहचानूँ? मैं तो परलोक को ही न मानने वाला बन गया था।

गुरुवर, मैं आपका वही प्रिय शिष्य हूँ, जिसे आपने संथारे का प्रत्याख्यान कराने से पहले मरणोपरान्त देव बनने पर देवलोक से आकर दर्शन देने का निर्देश दिया था।

अरे, तुम मेरे वही प्रिय शिष्य हो, किन्तु तुमने आने में बहुत विलम्ब कर दिया और तुम नहीं जानते कि उसके कारण मैं पतन की कैसी-कैसी गहरी खाइयों में गिरा? मैंने बालकों की हत्याएँ की, उनके आभूषण लूटे और संसार के भोग भोगने की अनन्त कामनाएँ की। मैंने

अपने दीर्घ संयम को बुरी तरह से कलंकित किया है मेरे शिष्य, तुम्हारे विलम्ब ने मेरे चित्त को भ्रमित कर दिया।

क्षमा करें गुरुदेव, जन्म लेते ही देवलोक के देव मानते नहीं, इसी कारण विलम्ब हो गया।

अब मैं क्या कहूँ? कहते हुए भी लज्जा लगती है।

आचार्यवर, अपनी धृष्टता के लिए क्षमा चाहता हूँ। बालक, साध्वी, बालक कोई भी वास्तविक नहीं थे, सब मेरी विकुर्वणा थी। आपके भ्रमित चित्त की परीक्षा लेने तथा उसे पुन:संयम में स्थिर करने के लिए यह सारी माया मैंने रची। आप आज्ञा दें तो एक निवेदन करूँ?

आदेश करो मेरे सुयोग्य शिष्य, तुमने तो मुझे डूबते हुए बचा लिया।

पूज्यवर, आप सरीखे ज्ञानी और त्यागी आचार्य ही मिथ्या कल्पना करने लगे, विपरीत बुद्धि से सोचने लगे। यदि आप ही सांसारिक भोगों के मोह में फँसकर संयम से डिगेंगे तो अल्पज्ञ प्राणियों पर कैसा बुरा प्रभाव पड़ेगा!

तुम सत्य कहते हो शिष्य, मैं अपने दुराचरण की आलोचना करता हूँ। तत्पश्चात् आचार्य मोक्ष मार्ग पर चल पड़े।

स्त्रोत- उत्तराध्ययन सूत्र की टीका।

सार-सुबह का भूला शाम को घर लौट आए तब भी अच्छा है।

❖ ❖ ❖

मूसल पर फूल उगाओगे?

यह सर्वविदित उक्ति है कि शूरवीरों के शब्द कोष में 'असंभव' शब्द नहीं होता। इसे यों कहिए कि शूरवीर पुरुष सामान्य रूप से असंभव समझे जाने वाले कार्य को भी सम्पन्न करके उसे संभव सिद्ध कर देते हैं। चाहे कर्मक्षेत्र हो अथवा धर्मक्षेत्र, ऐसे शूरवीर पुरुष सभी क्षेत्रों में अपना वीरत्व प्रदर्शित करते हैं, किन्तु धर्मक्षेत्र के ऐसे शूरवीर न केवल अपनी कीर्ति पताका को ही स्थायी बनाते हैं, अपितु विकासोन्मुख आत्माओं को सोत्साह अनुगामी बनने का मार्ग भी प्रशस्त कर जाते हैं। ऐसे ही असंभव को संभव कर देने की व्यंग्योक्ति का नाम है मूसल पर फूल उगाना और ऐसी ही व्यंग्योक्ति से प्रोत्साहित होकर प्राचीन काल के धर्मशूर मुनि मुकुन्द ने वास्तव में मूसल पर फूल उगा दिए।

आचार्य स्कन्दिल उस युग के प्रमुख धर्माचार्य थे। उन्होंने अपनी प्रखर तार्किक शक्ति से सिद्धसेन

दिवाकर जैसे उद्‌भट विद्वान को शास्त्रार्थ में पराजित किया था तथा उन्हें अपना शिष्य बना लिया था। वे इसी विक्रम संवत् की प्रथम शताब्दी के परम प्रभावक आचार्य थे। उन्हीं के पास दीक्षित हुए थे मुनि मुकुन्द।

उसी ओजमय वाणी का अचूक प्रभाव पड़ा मुकुन्द के हृदय पर। यद्यपि उनकी आयु प्रौढ़ता के क्षेत्र में प्रविष्ट हो चुकी थी, वे वैराग्याभिभूत हो गए और उन्होंने आचार्य के समीप दीक्षा अंगीकार करने का निर्णय ले लिया। आचार्य ने अपने सुदीर्घ अनुभव से अपने होने वाले शिष्य को परखा और उन्हें दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया।

मुनि मुकुन्द दीक्षा लेते ही ज्ञान साधना में सम्पूर्ण हृदय से निमग्न हो गए। प्रौढ़वय होने के कारण स्मृति भंग हो जाने के भय से वे सूत्र पाठ उच्च स्वर से याद किया करते थे। फिर उनकी यह आदत ही बन गई कि उनका उच्च स्वर सदा ही उपाश्रय में गूंजता रहता। यह उच्च स्वर अन्य मुनियों के ज्ञानाभ्यास में बाधक बनने लगा, अतः वे बराबर मुनि मुकुन्द को टोकते रहते कि धीरे बोलें। वे धीरे बोलने का प्रयास भी करते, किन्तु थक-हारकर फिर उच्च स्वर में ही अभ्यास करने लगते। उनका वाचन और पुनरावर्तन उसी क्रम में चलता रहा तो

एक दिन एक मुनि ने रोषपूर्वक उनसे कहा- मुनि मुकुन्द, कितनी बार आपको कह दिया कि उच्च स्वर में अभ्यास न किया करो, इससे हमारे अभ्यास में बाधा पड़ती है, पर आप हैं कि सुनते ही नहीं हैं। यह कोई अच्छी बात तो नहीं।

क्या करूँ मुनिवर, मन में या धीरे बोलने से मुझे सूत्र पाठ याद होता ही नहीं है। मैंने वैसा करके भी देखा तो निराश ही हुआ। आप जानते हैं कि ज्ञानाभ्यास तो मुझे करना ही है, फिर मेरे पास क्या उपाय है?

अपना ही नहीं, सबका खयाल रखना चाहिए- हमारी बाधा का भी तो आपको ध्यान रखना चाहिए।

मैंने निवेदन किया न कि मेरे पास अन्य कोई उपाय नहीं है।

अन्य कोई उपाय नहीं है- कहकर क्या सबके ज्ञानाभ्यास के प्रति अपना उपेक्षा भाव ही दिखाते रहेंगे? स्वयं ही ज्ञानाभ्यास करके क्या मूसल पर फूल उगाओगे?

यह व्यंग्योक्ति सुनकर मुनि मुकुन्द का हृदय तिलमिला उठा। मुनि का वचन उनकी अन्तरात्मा में कांटे की तरह चुभ गया। उन्होंने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु मन ही मन दृढ़ संकल्प कर लिया कि चाहे जो हो, वे मूसल पर फूल उगाकर ही रहेंगे।

मुनि मुकुन्द को याद आया अपना गृहस्थ जीवन। जबसे उन्होंने समझ पकड़ी और जब तक परिवार का मुखिया पद निभाया, कभी भी अपनी बात से पीछे नहीं हटे। उनका जन्म गौड़ देश के कौशल ग्राम में हुआ था और उनका परिवार सुसंकृत था। सर्वत्र एवं सर्वदा उनके सम्मान का प्रमुख कारण ही यह था कि चाहे जो हो, वे अपने वचन का सदा यथावत् निर्वाह करते थे। श्रेष्ठ संकल्प तथा उसकी दृढ़तापूर्वक सम्पूर्ति उनके जीवन का प्रधान गुण था।

पूज्यवर, मैं एक संकट में फँस गया हूँ, उससे उबरने का आप ही कोई उपाय बताइए- मुनि मुकुन्द ने अपने गुरु आचार्य स्कन्दिल की सेवा में निवेदन किया।

ऐसा क्या संकट है मुनि कि तुम इतने व्याकुल से दिखाई दे रहे हो? मुनि को तो सदा संकटजयी बनना हेाता है- आचार्य ने स्नेहपूर्वक पूछा।

अपनी अन्तर्वेदना को शब्द देते हुए मुनि बोले- गुरुदेव, मेरी प्रौढ़ बुद्धि कुछ ऐसी मोटी है कि बिना उच्च स्वर में बोले मुझे कोई सूत्र पाठ याद नहीं होता है। परन्तु उसी उच्च स्वर के कारण अन्य मुनियों के अभ्यास में विक्षेप होता है। यही मेरा संकट है और इसे मैं संकट इस दृष्टि से कह रहा हूँ कि मैं अपने ज्ञानाभ्यास की उग्रता में तनिक भी न्यूनता नहीं लाना चाहता। मेरी आन्तरिक

अभिलाषा है कि मैं न्यूनतम समय में अधिकतम शास्त्रज्ञान उपार्जित करूँ। इस दुविधा में आप ही मेरा उद्धार कीजिए।

वत्स, इसमें दुविधा की कोई बात नहीं है। यदि संकल्प में पूर्ण दृढ़ता हो तो कोई ऐसा लक्ष्य नहीं, जिसे प्राप्त न किया जा सके। मुझे तुम ऐसे ही दृढ़ संकल्पी दिखाई दे रहे हो। तुम्हारे लिए उसकी पूर्ति का कोई मार्ग निकालना ही होगा। इस सम्बन्ध में मैं तुमसे एक बात करना चाहता हूँ।

कृपा करें आचार्य प्रवर! मुनि बोले।

मैं तुम्हें वह सरस्वती मंत्र देना चाहता हूँ जिसके सिद्ध कर लेने से सारा ज्ञान स्वतः ही तुम्हारी जिह्वा पर आ विराजेगा। फिर तुम्हें न याद करने की जरूरत रहेगी और न उच्च स्वर निकालने की जरूरत। किन्तु इस मंत्र की साधना अत्यन्त कठिन है, क्या तुम यह साधना कर सकोगे?

अवश्य भगवन् अवश्य, एक बार जो धार लिया, वैसा मैंने अपने सारे जीवन में सफलतापूर्वक पूरा किया है। यदि कर्म क्षेत्र में भी मेरा वैसा साहस बना रहा तो अब धर्मक्षेत्र में तो किसी तरह की झिझक का कोई काम ही नहीं है। आप तो कृपा करके वह सरस्वती मंत्र मुझे अवश्य ही प्रदान कीजिए तथा उसकी साधना विधि का निर्देश। मैं प्राणपण से साधना सफलता पूर्वक सम्पन्न

करूंगा- मुनि मुकुन्द के मुख पर एक अनूठा तेज विस्तारित हो गया।

आचार्य अपने शिष्य के उस तेज को देखकर मन ही मन निश्चिन्त हो गए और उन्होंने मुनि को सरस्वती मंत्र तथा उस की साधना विधि विस्तार से बता दी।

सरस्वती मंत्र ग्रहण करके मुनि मुकुन्द ने इक्कीस दिवस तक निरन्तर आचाम्ल व्रत का आचरण किया तथा की उसके साथ मंत्र की साधना। सम्पूर्ण हृदय से परम निष्ठापूर्वक साधे गए उस मंत्र से सरस्वती देवी प्रसन्न हो गई और प्रकट होकर बोली- वत्स, मैं तुम्हारी साधना से प्रसन्न हूँ। क्या वर चाहते हो? जो भी मांगोगे, मैं दूंगी।

हे देवी, आप मेरी अन्तरेच्छा जानती हैं, उसकी पूर्ति हो ऐसा वर दीजिए- मुनि ने सविनय निवेदन किया।

तुम्हारे अन्तःकरण में सर्वविद्या सिद्धि का लक्ष्य रहा हुआ है, अतः मैं वर देती हूँ- सर्वविद्या सिद्धो भव। सभी प्रकार की विद्याएँ तुम्हें सिद्ध हों। समस्त ज्ञान तुम्हारी जिह्वा पर रहेगा, सभी मंत्र तुम्हें सिद्ध होंगे तथा तुम्हारे शक्ति प्रयोग से अधिकाधिक धर्म प्रभावना होगी- देवी ने अपने आराधक को उत्कृष्ट वर प्रदान कर दिया।

परम कृपा की आपने मुझ पर मुनि मुकुन्द ने आनन्द मग्न होते हुए कहा, किन्तु उसी समय देवी अन्तर्धान हो गई।

वरदान प्राप्त करके मुनि मुकुन्द नम्रता की प्रतिमूर्ति बन गए और उसी नम्र भाव से उनकी अन्तरात्मा में चुभा हुआ कांटा भी निकल गया। क्योंकि उन्होंने असंभव को भी संभव कर दिखाने का शौर्य दिखाया- उस वृद्धावस्था में भी वे अनेक विद्याओं के धारक बने, यह मूसल पर फूल उगाने से क्या कम है?

आचार्य श्री ने अपने संघीय संत मुनिराजों के बीच यह प्रेरणा दी कि किसी भी मुनि को व्यंग्य या कठोर भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने संकल्प को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। मुनि मुकुन्द के लिए तो व्यंग्य भरे शब्द भी वरदान बन गए। उनकी सुदृढ़ संकल्प शक्ति से उन्होंने वह कार्य कर दिखाया, जो कार्य इस वय में सामान्यतया संभव कम है।

क्षमा करें महामुनि, आपने असंभव को संभव कर दिखाया है, आप धन्य हो। मैंने आपका हृदय दुखाया उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। मैं आज समझा हूँ कि दृढ़ संकल्प के समक्ष कुछ भी असंभव नहीं होता- उस मुनि ने अपना मस्तक मुनि मुकुन्द के आगे झुका लिया।

स्त्रोत- प्रभावक चरित्र।

सार- दृढ़ संकल्प सदा विजयी होता है।

❖ ❖ ❖

सुमेरू की अमृत से सिंचाई

मैंने देखा कि पूरा सुमेरू पर्वत अपनी आभा खोकर काला पड़ता जा रहा है और मैं उस परिवर्तन को देखकर दु:खी हुआ। तभी मुझे अमृत से भरे हुए कई घड़े दिखाई दिए। मेरे मन में एक नया हर्ष जागा और मैंने उन घड़ों को उठा-उठाकर सुमेरू पर्वत को अमृत से सींचना शुरू किया। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि अमृत से सिंचाई के बाद वही सुमेरू पर्वत अपनी पूर्व आभा को लेकर पुन: प्रकाशित हो उठा। मैं उस प्रकाशमान स्वरूप को देखकर आनन्दमग्न हो गया। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे कि मेरे हाथों कोई महान कार्य सम्पन्न हुआ है।

एक रात ऐसा स्वप्न देखा एवं स्वप्न देखने के समय ऐसी अनुभूति प्राप्त की श्रेयांसकुमार ने।

भारतवर्ष के गजपुर नगर में सोमप्रभ नामक राजा राज्य करता था। यह सोमप्रभ भगवान ऋषभदेव

का पौत्र तथा तक्षशिला के राजा बाहुबली का पुत्र था। श्रेयांसकुमार इसी राजा सोमप्रभ का युवराज था। वह बुद्धिशाली, गुणी तथा सुन्दर था।

उसी रात सोमप्रभ ने भी एक स्वप्न देखा- एक दिव्य पुरुष आगे बढ़ा जा रहा है, पर सामने से एक शत्रु सेना आई और वह उस दिव्य पुरुष को पराजित करने जा रही है। तभी श्रेयांसकुमार वहाँ आता है और वह उस दिव्य पुरुष की सहायता से उस शत्रु सेना को परास्त कर देता है।

आश्चर्य का विषय यह रहा कि उसी रात उस नगर के सुबुद्धि श्रेष्ठि ने भी एक स्वप्न देखा। वह इस प्रकार था कि अपनी हजारों किरणों से चमकता हुआ सूर्य धीरे-धीरे अपनी किरणें खोने लगा और वह सम्पूर्ण किरणों से रहित हो रहा था कि श्रेयांसकुमार ने उस सूर्य को पुनः हजारों किरणों वाला बना दिया। तब सूर्य पहले से भी अधिक प्रखरता के साथ प्रकाशित होने लगा।

प्रातःकाल राज्य सभा में श्रेयांसकुमार, सोमप्रभ तथा सुबुद्धि तीनों ने अपने-अपने स्वप्नों का विवरण बताया। स्वप्नवेत्ताओं ने भिन्न-भिन्न प्रकार से उन स्वप्नों का फल बताना शुरू किया, किन्तु कोई भी निश्चित फल की भविष्यवाणी नहीं कर सका। अन्ततः फल की दृष्टि से सब इस बात पर एकमत हुए कि जो भी हो,

श्रेयांसकुमार को अवश्य ही किसी महान लाभ की उपलब्धि होने वाली है।

ऋषभदेव ही कर्मयुग के प्रथम प्रवर्तक हुए। उनसे पहले युगलिया काल चल रहा था। एक बालक और एक बालिका युगल रूप में जन्म लेते थे और युवा होने पर वे ही दम्पति बन जाते थे, यही क्रम आगे चलता रहता। उन्हें अपने निर्वाह के लिए कोई श्रम नहीं करना पड़ता था। खाद्य, पेय, वस्त्र आदि सभी इच्छित पदार्थ उन्हें स्वमेव प्रकृति से प्राप्त हो जाते थे। तब पुरुषार्थ श्रम या कर्म का अभाव था। फिर इन उपलब्धियों का ह्रास होने लगा और युगलियों का जीवन संकटग्रस्त बनने लगा। तभी ऋषभदेव राजा हुए और उन्होंने कर्म का पाठ पढ़ाया। उन्होंने कृषि सिखाई, मसि (स्याही) से लेखन विद्या का प्रसार किया तथा असि (तलवार) से रक्षा करना बताया। तब युग ने एक नई करवट ली- संकट मिटे और नये उपायों से समृद्धि बढ़ी।

तदनन्तर ऋषभदेव ने अनेक लोगों के साथ दीक्षा ली और यों वे कर्म के पश्चात् धर्मयुग के भी प्रवर्तक बने। लोगों को कर्म की शिक्षा देने में तो वे आदेश-निर्देश दे देते थे किन्तु धर्म प्रवर्तक बनने के बाद वे मौन ही हो गए। लोगों को साध्वाचार की प्रक्रिया

तनिक भी समझ में नहीं आई थी। वे बड़े सरल और भोले लोग थे। साधु द्वारा भिक्षा गवैषणा के रहस्य को तो वे जानते ही नहीं थे।

फलस्वरूप भगवान ऋषभदेव तपस्याओं के पारणे के दिन भिक्षा हेतु सर्वत्र भ्रमण करते तो किसी को यह समझ में नहीं आता कि ऐसे महान राजा को तुच्छ आहार आदि की मनुहार की जानी चाहिए ? निर्दोष आहार न मिलने पर भगवान की तपस्या आगे बढ़ती रही तथा वे साधु मर्यादाओं के अनुसार विचरण करते रहते। ऐसी कठिन तपस्या के परिणामस्वरूप भगवान की काया सूखकर कांटा हो गई, जैसे प्रकाशमान सुमेरू पर्वत की चमक लुप्त होने लगी हो या कोई दिव्य पुरुष शत्रुओं से घिर कर संकटग्रस्त बन गया हो अथवा प्रकाशमान सूर्य की किरणें तेजहीन होने लगी हों। ऐसा था नहीं, किन्तु लोगों को अल्पज्ञ दृष्टि से ऐसा दिखाई देने लगा।

सदा के समान भगवान ऋषभदेव भिक्षा की गवैषणा में नगर में भ्रमण करने लगे।

आओ रे आओ, अपने राजा ऋषभदेव पधारे हैं- चारों ओर से नागरिक आदरपूर्वक पुकारने लगे और भगवान के आस-पास एकत्रित हो गए।

फिर नागरिकों की आवाज गूंजी भाइयों, देख

क्या रहे हो? हमारे राजा पैदल चल रहे हैं, राजा होकर पैदल चलें- क्या आपके पास वाहनों का अभाव है? वाहन लाओ और राजा को भेंट करो।

नागरिक अपने-अपने घरों को दौड़े और रथ, हाथी, घोड़े आदि लेकर पुनः उपस्थित हुए तथा भगवान से सम्मानपूर्वक कहने लगे- महाराज, आप पैदल न चलें। आप थक गए होंगे, हमारे इन वाहनों को स्वीकार करें तथा इन वाहनों का उपयोग करके सुख पाएँ।

भगवान मौन खड़े रहे। अपनी साधुचर्या के विषय में लोगों को क्या और कैसे समझाते? वह तो अपने सुख के लिए मार्ग बताने जैसा हो जाता।

नागरिकों के स्वर फिर गूंजे- भाइयों, भगवान के शरीर पर न कोई वस्त्र है और न आभूषण, इनके बिना इनकी शोभा कैसे दिखाई देगी? पैरों में पदस्त्राण भी नहीं है- इनके बिना कांटे, कंकड़, पत्थर हमारे महाराज के पैरों को कितना कष्ट पहुँचाते होंगे? इन्हें ये सब भेंट करो।

पुनः नागरिक बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, पदस्त्राण, उबटन आदि सभी पदार्थों के लिए आग्रह करने लगे। भेंट स्वरूप भगवान के आगे रख दिए। भगवान तब भी मौन खड़े रहे।

कुछ भी ग्रहण न करते हुए देखकर नागरिकों में नया भाव पैदा हुआ- अरे, हमारे महाराज भूखे प्यासे भी तो होंगे। इनके लिए खाद्य, पेय आदि उपस्थित करो।

नागरिक दौड़कर फल, फूल, कन्द, कच्चा पानी आदि नाना पदार्थ भगवान को अर्पित करने लगे, पर भगवान ने कुछ भी ग्रहण नहीं किया।

लोग आश्चर्यचकित कि हमारे ऋषभ राजा को यह क्या हो गया है जो हमारी कोई भी भेंट स्वीकार नहीं करते? क्या हमसे कोई भारी भूल हो गई है, जो वे हमसे रुष्ट हैं? वे ऐसे कष्ट क्यों भोग रहे हैं? हमारी मनुहार क्यों नहीं मानते?

पर कोई यह नहीं जानता था कि एक साधु को कैसे प्रासुक आहार की गवैषणा होती है, दोष टालकर भिक्षा कैसे दी जाती है या कि उन्हें पानी को कैसे बहराया जाता है?

भगवान मौन और हतप्रभ-समस्या का समाधान कहीं नहीं था।

श्रेयांसकुमार अपने प्रासाद के गवाक्ष में बैठे हुए थे। उनकी दृष्टि राजपथ पर ही थी। भगवान ऋषभदेव को पधारते हुए उन्होंने देखा और देखकर वे विचार मग्न थे कि भगवान को किस पदार्थ की अपेक्षा है? वे अपने अन्त:करण में गहरे उतरकर गंभीर चिन्तन करने लगे।

चिन्तन के उस प्रवाह में अकस्मात् एक नवीन प्रकाश का अभ्युदय हुआ और उन्हें जाति स्मरण (पूर्वजन्म) ज्ञान प्राप्त हो गया। उन्हें स्पष्ट दिखाई दिया- वर्तमान जन्म से नौ जन्म पहले उनके परदादा ऋषभदेव ईशान कल्प नामक देवलोक में ललितांग नामक देव के रूप में थे और वे थे उनकी स्नेहपात्री स्वयंप्रभा नामक देवी के रूप में।

उस पूरे जीवन तथा उससे पहले के जीवन का समग्र घटनाचक्र उनके स्मृति पटल पर अंकित हो गया- घातकीखण्ड द्वीप में पूर्व महाविदेह क्षेत्र के मंगलावती विजय में नन्दी नामक ग्राम था। वहाँ नागिल नाम का एक गृहस्थ रहता था। वह दरिद्र था और ऊपर से उसका परिवार भी बहुत बड़ा था। उसकी स्त्री का नाम नागश्री था तथा उसके सुलक्षण, सुमंगला आदि छः कन्याएँ पहले से थी और सातवीं कन्या के रूप में जिसने जन्म लिया वह स्वयं श्रेयांसकुमार का जीव था। सातवीं कन्या के उत्पन्न होने से सभी बहुत दुःखी हुए और विक्षोभ में उसका कोई नाम नहीं रखा, पर वह निर्नामिका के नाम से पुकारी जाने लगी। उस कन्या को सभी दुत्कारते। एक बार पड़ोस के बालक के पास देखकर उसने भी अपनी माँ से मिष्ठान्न मांगा। माँ ने दुत्कार दिया- तेरे लिए यहाँ मिष्ठान कहाँ रखा है? खाने की ऐसी ही मन में आ गई हो तो अम्बर तिलक

पहाड़ पर चली जा, वहाँ तुझे मनोरम फल खाने को मिलेंगे। वह बालिका ही थी, हठ में आकर लोगों के साथ पहाड़ पर चली ही गई। वहाँ उसने स्वादिष्ट फल खाए, लेकिन वहीं उसे महान ज्ञानी युगन्धर आचार्य के दर्शन भी हुए। उनसे उसने धर्मकथा सुनी एवं अपने दु:ख बता कर वह मोक्ष मार्ग पर चलने के लिए तत्पर बन गई। आचार्य से उसने पाँच अणुव्रत ग्रहण कर लिए। फिर वह वापिस घर लौट आई। धीरे-धीरे वह युवा हुई किन्तु उसके साथ विवाह करने के लिए कोई भी युवक तैयार नहीं हुआ। रूखा-सूखा, खा-पहन कर उसने काफी समय व्यतीत किया, पर शरीर की अतिशय जीर्णता को देखकर उसने संथारे का प्रत्याख्यान कर लिया और मरणोपरान्त ललितांग देव की नई स्वयंप्रभा देवांगना बन गई।

श्रेयांसकुमार के मानस में पूर्व जीवनों की घटनापरक परतें एक-एक करके खुलती जा रही थी। एक दिन स्वयंप्रभा देवी ने अपने देव को उदास देखा तो पूछ लिया- प्राणेश, आप उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं? ललितांग बोला- देखती नहीं मेरी पुष्पमाला की कान्ति क्षीण होती जा रही है। अब मेरी यहाँ किंचित् मात्र आयु ही शेष रही है। ललितांग देव के मरणोपरान्त स्वयंप्रभा देवी वियोग से अत्यधिक दु:खी हो गई। ललितांग का

लोहार्गल राजा सुवर्णजंध की रानी लक्ष्मीवती के गर्भ से जन्म हुआ- नाम रखा गया वज्रजंध। स्वयंप्रभा भी वियोग दु:ख में आयु पूर्ण कर पुंडरीकिणी नगरी के वज्रसेन चक्रवर्ती की रानी गुणवती के गर्भ से जन्मी उसका नाम श्रीमती रखा गया। युवा होने पर एक दिन देव सम्पात को देखकर श्रीमती को पूर्वजन्म का ज्ञान हो गया और तब वह नए जन्म में आए अपने ललितांग की खोज करने लगी। उसने ललितांग देव व वहाँ के उसके जीवन को चित्रित कराकर वह चित्रपट एक सार्वजनिक स्थान पर लगवा दिया। संयोग से वज्रजंध ने उसे देखा और उसे भी पूर्वभव का ज्ञान हो गया। तब वज्रजंध और श्रीमती का मिलन हुआ तथा उनका विवाह भी हो गया। दोनों से एक गुणशील पुत्र भी जन्मा। एक बार दोनों को शरवण मार्ग के समीप वाले प्रदेश में सागर सेन एवं मुनिसेन नामक दो अनगारों के दर्शन हुए जो संसार पक्ष से वज्रसंध के भ्राता ही थे। वहाँ उन्हें स्वयं अनगार बनने का मनोरथ उत्पन्न हुआ। नगर में पहुँचे तो वहाँ विषयुक्त धुँआ फैला हुआ था और उससे दोनों की मृत्यु हो गई। फिर वज्रजंध दो जन्म बाद प्रभंकरा नगरी में सुविधि वैद्य का अभयघोष नामक पुत्र तथा श्रीमती का जीव भी उसी नगर में श्रेष्ठिपुत्र केशव बना। फिर दोनों क्रमश: वज्रनाम चक्रवर्ती और उसके सारथी बने। उस जन्म में अपने

पिता वज्रसेन का साधु जीवन तथा तीर्थंकर जीवन उन्होंने देखा और साधुचर्या का अनुभव लिया। वज्रनाम का जीव ऋषभ राजा बना और उसके सारथी का जीव श्रेयांसकुमार।

इस जाति स्मरण ज्ञान से श्रेयांसकुमार ने साधुचर्या, भिक्षाचरी एवं प्रासुक गवैषणा आदि के बारे में सारी बातें जान ली तथा तत्क्षण वहाँ से उठकर नीचे भगवान ऋषभदेव को निर्दोष भिक्षा देने के लिए वे आगे बढ़े। इतने में भगवान उन्हीं के द्वार पर पधार गए।

उसी समय कोई व्यक्ति उन्हें (श्रेयांसकुमार को) भेंट में देने के लिए इक्षुरस (गन्ने का रस) के भरे हुए कई घड़े लेकर आ पहुँचा। श्रेयांसकुमार के हृदय में हर्ष उमड़ पड़ा, भाव जागा- मैं कितना धन्य हूँ जो सुपात्रों में श्रेष्ठ भगवान ऋषभदेव भिक्षा हेतु मेरे घर पर पधारे हैं तथा मुझे इक्षुरस जैसी निर्दोष सामग्री भी प्राप्त हो गई है।

उन्होंने इक्षुरस का घड़ा हाथ में उठाया और भगवान से निवेदन किया- प्रभु यह आहार सर्वथा निर्दोष है। यदि आपको अनुकूल लगे तो ग्रहण कीजिए।

भगवान ने मौन रहकर अपनी अंजुरी आगे फैला दी। श्रेयांसकुमार उनकी अंजुरी में इक्षुरस उड़ेलने लगे। अंजुरी मुख से लगी हुई थी, अतः एक बून्द भी नीचे नहीं गिरी।

यों प्रथम पारणा श्रेयांसकुमार द्वारा प्रदत्त इक्षुरस से सम्पन्न हुआ। इक्षुरस के सुप्रभाव से भगवान ऋषभदेव

का कृश एवं उत्तप्त शरीर स्वस्थ और शान्त हो गया। उस अभूतपूर्व दान पर देवों ने गंधोदक एवं पंचवर्णी पुष्पों, वस्त्रों एवं स्वर्ण की वृष्टि की तथा दुंदुभियाँ बजाई। दान की जय-जयकार से गगन मण्डल गूंज उठा।

इसके साथ ही तीनों स्वप्नों का फल भी सब पर स्पष्ट हो गया- सुमेरू पर्वत कृशकाय होकर काला पड़ रहा था कि उस पर इक्षुरस रूपी अमृत सींचा गया और उसकी कान्ति पुनः लौट आई। यह दिव्य कार्य किया श्रेयांसकुमार ने। कठिन परीषहों की शत्रुसेना से घिरे हुए थे दिव्य पुरुष भगवान ऋषभदेव, उस सेना को परास्त किया श्रेयांसकुमार ने। सूर्य रूप भगवान का तेज मन्द हो रहा था कठिन तप के प्रभाव से, वह तेज लौटाया उस युग में पहली बार प्रासुक भिक्षा का दान देकर श्रेयांसकुमार ने।

और तब श्रेयांसकुमार ने ही सबको साधुचर्या के नियम बताए, भिक्षाचरी की विधि बताई तथा प्रासुक आहार-पानी का स्वरूप बताया।

स्त्रोत- नव पद वृहद् वृत्ति।

सार- श्रेष्ठ दान से महान पुण्य लाभ होता है।

❖ ❖ ❖

देवदत्ता का दारुण दुःख

रोहीतक नामक नगर का यह एक दृश्य था- राजपुरुषों, सैनिकों तथा रक्षकों से घिरी हुई अवकोटक बन्ध से बंधी हुई कटे कर्ण व नाक वाली एक स्त्री जिसके हाथ में हथकड़ियाँ, गले में लाल कनेर की माला पहनाई हुई थी। जिसका शरीर गेरू के चूर्ण से पोता गया था। वध्य पुरुष योग्य वस्त्र पहनाए गए थे। इसे सूली पर चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा था। नगाड़े कूट-कूटकर राजपुरुष नागरिकों को सुना रहे थे- इस देवदत्ता पर राज्य का कोई कोप नहीं है, बल्कि यह अपने ही कुकृत्य का फल भोग रही है।

गौतम स्वामी भिक्षाचरी के लिए एक ही पंक्ति में ऊँचे-नीचे सभी घरों में भ्रमण कर रहे थे। इस बीच उन्होंने यह दृश्य देखा। उनकी जिज्ञासा जगी कि इस स्त्री ने ऐसे कौनसे कुकर्म किए, जिनका ऐसा भयंकर फल इसको भोगना पड़ रहा है। उसके वैसे दारुण दुःख

ने उनके हृदय को विचलित कर दिया। वे गोचरी लेकर अपने स्थान पर लौटे और भगवान महावीर की सेवा में उपस्थित होकर बोले- भगवन्, मैंने आज राजपथ पर ऐसा-ऐसा दृश्य देखा- मैं जानना चाहता हूँ कि उस स्त्री का वर्तमान ऐसा क्यों है? उसका अतीत कैसा था तथा अब उसका भविष्य क्या होगा?

भगवान ने फरमाया- हे गौतम, जिस स्त्री को तुमने देखा है, वह देवदत्ता रानी है। इस नगर का राजा वैश्रमण दत्त था तथा उसकी रानी का नाम है श्रीदेवी। इनका पुष्पनन्दी नाम का एक पुत्र है। इसी नगर में दत्त नामक एक गाथापति रहता है। उसकी स्त्री का नाम कृष्णश्री है। यह देवदत्ता इसी गाथापति की पुत्री है।

एक बार यही देवदत्ता अपने पिता के घर वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर क्रीड़ा कर रही थी- यौवन से भरपूर तथा अनुपम सौन्दर्य से मोहक। राजा वैश्रमण उधर से निकल रहा था तो उसकी दृष्टि देवदत्ता पर पड़ी। उसे उसका सौन्दर्य भा गया और उसने दत्त गाथापति से उसकी पुत्री का हाथ अपने पुत्र राजकुमार पुष्पनन्दी के लिए मांग लिया। इस प्रस्ताव पर दत्त एवं कृष्णश्री अतीव प्रसन्न हुए तथा उन्होंने धूमधाम से अपनी पुत्री देवदत्ता का विवाह राजकुमार पुष्पनन्दी के साथ कर दिया।

देवदत्ता रानी बनकर राजमहल में पहुँच गई। वह रूपगर्विता तो थी ही, किन्तु स्वभाव से अतीव धूर्त, कुटिल एवं स्वार्थी थी, जबकि पुष्पनंदी का स्वभाव उससे विपरीत था। वह अपने माता-पिता का भक्त, सरल हृदय तथा सेवाभावी था। धूर्त होने के कारण देवदत्ता अपने मूल स्वभाव की झलक बाहर प्रकट नहीं होने देती थी और इस प्रकार बाह्य रूप से यही अपना स्वभाव दिखाती थी जैसे कि उसका भी अपने पति के ही समान स्वभाव है। इसलिए उसकी आन्तरिक वृत्तियों से पुष्पनन्दी ही नहीं, उसके माता-पिता भी अनभिज्ञ रहे। यों वह सबकी विश्वासपात्री बन गई। कुछ समय बाद राजा वैश्रमण की मृत्यु हो गई तथा उसके स्थान पर पुष्पनन्दी का सिंहासनारोहण हो गया।

भगवान देवदत्ता रानी के वर्तमान भव की कथा सुना रहे थे।

बेटा पुष्पनन्दी, तुम अब राजा हो गए हो, राजकाज में भी तुम्हें व्यस्त रहना पड़ता होगा। तब भी इतना समय मेरी सेवा में व्यतीत कर देते हो, अब ऐसा न किया करो- माता श्रीदेवी ने यह बात अपने पुत्र को तब कही जब एक दिन प्रातःकाल पुष्पनंदी पद-वन्दना करने के लिए उसके कक्ष में पहुँचा।

यह आप क्या कह रही हैं? आप मेरी जन्मदायिनी माता हैं। मैं आपकी जितनी भी सेवा करूँ, वह कम है और मैं करता ही क्या हूँ? सिर्फ अधिक समय तक आपके समक्ष ही तो बना रहता हूँ ताकि आपकी सेवा में किसी भी प्रकार कमी नहीं रहे और मैं राजकाज की उपेक्षा भी कतई नहीं करता हूँ, सारे कार्य मैं स्वयं देखता हूँ और निर्णय देता हूँ- पुष्पनंदी ने निवेदन किया। फिर सेविकाओं को पुकार कर कहा- मैं यहीं ठहरा हुआ हूँ। तुम अत्यन्त सावधानी से माता के शरीर की सहस्त्रपाक तेल से नरम हाथों से मालिश करो और सुगंधित जल से स्नान करवाओ। मैं सामने बैठकर तब माता को भोजन करवाऊंगा। तुम जानती हो कि माता के भोजन कर लेने के पश्चात् ही मैं भोजन करूंगा।

माता स्नेहपूर्ण स्वर में बोली- पुत्र, मैं जानती हूँ और अतीव हर्षित होती हूँ कि मेरे पुत्र की मेरे प्रति अटूट भक्ति है। फिर भी तुम्हारी व्यस्तता के कारण ही मैं कहती हूँ कि तुम इतना समय यहाँ न लगाया करो।

मातुश्री, मैंने निवेदन किया है कि यहाँ आपकी सेवा में रहने के उपरान्त भी सभी राजकाज मैं ही निपटाता हूँ। कोई भी प्रजाजन मेरे से असन्तुष्ट नहीं है।

फिर भी पुत्र, एक प्रजा जन को तो तुम्हारी ऐसी

व्यस्तता से अवश्य ही असन्तोष रहता होगा।

कौन है वह? क्या उसने आपके समक्ष मेरे प्रति कोई असन्तोष प्रकट किया है?

प्रकट न करने से ही क्या किसी के हृदय में असन्तोष नहीं रहता?

असन्तोष नहीं रहना चाहिए, माँ मैं उसके असन्तोष को अवश्य दूर करूंगा। आप मुझे उसका नाम परिचय देवें।

वह हो सकती है मेरी पुत्रवधू देवदत्ता। उसको ऐसी व्यस्तता में तुम कितना-सा समय दे पाते होगे?

ठठाकर हँस पड़ा पुष्पनंदी, बोला- वाह माँ, क्या उसका असन्तोष कभी भी आपकी सेवा से बढ़कर हो सकता है? ठीक है कि मैं उसे अब पहले की तुलना में बहुत कम समय दे पाता हूँ, किन्तु उसका यह दुष्प्रभाव कभी नहीं होना चाहिए कि वह किसी तरह के असन्तोष का अनुभव करे। क्या उसने इस विषय में आपसे कुछ कहा है माँ?

नहीं पुत्र नहीं, उसने मुझे कुछ भी नहीं कहा है। यह तो अनुमान से मैंने ही तुम्हें बताया है।

तब कोई चिन्ता न करो माँ, आप स्नान आदि से निवृत्त हो जाओ ताकि मेरे सामने मैं आपको भोजन करते

हुए देखकर आनन्द लाभ करूँ- पुष्पनंदी ने अपनी माता से अनुरोध किया।

माताश्रीदेवी निवृत्त होने चली गई।

राजकाज से निवृत्त होकर जब राजा पुष्पनंदी अपने शयन कक्ष में गया तब रात के बारह बज चुके थे। देवदत्ता इस तरह बिफर कर बैठी हुई थी जैसे कि कोई सर्पिणी अपने फन फैलाए हुए फुंफकार रही हो। पति के पहुँचते ही वह बरस पड़ी- अब आपको मेरी सुध लेने का समय कहाँ है? मैं तो सभी प्रकार से आपके लिए उपेक्षिता हो गई हूँ।

देखो देवदत्ते, आज तक मैंने तुम्हारे साथ कभी भी उपेक्षापूर्ण कोई व्यवहार नहीं किया है, किन्तु राजा होने के नाते मैं अपने राज्य कर्त्तव्यों के प्रति भी कोई उपेक्षा नहीं कर सकता हूँ- पुष्पनंदी ने दृढ़तापूर्वक कहा।

ठीक है पतिदेव, आप राजा पहले हैं और पति बाद में, क्यों यही आपका विचार है न? रानी होकर भी मैं तो कुछ न रही, राजा का कोई कर्त्तव्य रानी के प्रति भी तो होता होगा- मुँह फुलाकर देवदत्ता ने कहा।

उस कर्त्तव्य में तुमने कब कौनसी कमी देखी है?

यही देखिये न कि अभी आधी रात का समय हो रहा है।

ऐसा तो होता है। राज्य की गंभीर समस्याओं का समाधान तत्काल करना होता है और उसमें समय लग ही जाता है।

हाँ, यह समय रानी का ही लगता है, माँ का कैसे लग सकता है?

पुष्पनंदी ऐसी ओछी बात अपनी ही पत्नी के मुँह से सुनकर चौंक पड़ा और गंभीर होकर बोला- माता के प्रति ऐसी ओछी बात तुम्हारे मुँह से निकली ही कैसे? तुम्हें इस पर लज्जा अनुभव हो या नहीं, मैं लज्जित हूँ। माँ की ममता की क्या किसी के साथ तुलना की जा सकती है?

तब देवदत्ता का अन्तर्स्वभाव उघड़ने लगा। वह बोली- मैं देख रही हूँ कि तुम्हारे लिए माँ ही सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं। यही उपेक्षा मुझे खाए जाती है। आनन्द भोग में अब हमारा कितना-सा सहभाग रह गया है? मैं इसे सह नहीं सकती। तुम्हें सम्पूर्ण रूप से मेरा ही होकर रहना चाहिए।

क्या बच्चों जैसी बातें करती हो? कुछ अपने दायित्व को भी समझा करो- समझाने के स्वर में पुष्पनंदी ने कहा और थकान अधिक होने के कारण सो गया।

किन्तु पूरी रात देवदत्ता सो नहीं सकी। दुष्ट

विचार उसके दिल में उमड़ते-घुमड़ते रहे और वह कुछ अकल्पनीय करने की घृणित योजना बना बैठी, क्योंकि ईर्ष्या और स्वार्थ की आग में वह जल रही थी।

राजा यथासमय उठकर चला गया, पर रानी अपनी दुर्भावनाओं में खोई हुई पलंग पर पड़ी रही और कैसे क्या करे, उसका क्रम बांधती रही। उसने निश्चय किया कि जो कुछ करना है, वह स्वयं करेगी, किसी को भी अपनी रहस्यपूर्ण क्रिया में साझीदार नहीं बनाएगी।

एक रात्रि का प्रथम प्रहर बीत रहा था कि वह उठी, उसने धधकती अग्नि में एक लौह दण्ड तपाकर लाल कर लिया और उसे हाथ में थामकर वह सीधी राजमाता श्रीदेवी के कक्ष में पहुँच गई। उड़ती हुई नजर से देखा कि उस कक्ष में कोई नहीं था। उसे वह दासी नहीं दिखाई दी जो एक कोने में बैठी ऊंघ रही थी। राजमाता के निद्राधीन हो जाने के बाद वह भी विश्राम करने लगी थी।

उस दुष्टा देवदत्ता ने वह तपा हुआ लौहदण्ड श्रीदेवी की योनि में घुसा दिया, जिसकी अपार वेदना से उसका तत्काल प्राणान्त हो गया। राजमाता की चीख के साथ ही वह दासी सावचेत हो गई थी किन्तु रानी को ही वैसा कुकर्म करते देखकर सन्न रह गई और कुछ भी

बोल नहीं सकी। देवदत्ता के लौट जाने के बाद दासी भागी-भागी वहाँ पहुँची जहाँ राजा अपने मंत्री के साथ विचार विमर्श में संलग्न था। वह थर-थर धूजती खड़ी रही, बोलना चाहकर भी बोल नहीं पाई।

क्या बात है दासी? इतनी बुरी तरह से घबरा क्यों रही हो? स्वयं घबराकर पुष्पनंदी ने पूछा।

महाराज, राजमाता जी नहीं रही।

क्या बोल रही हो तुम? पुष्पनंदी दासी के साथ भागा-भागा अपनी माता के कक्ष में पहुँचा। वहाँ उसने जो कुछ देखा और प्रत्यक्षदर्शी दासी ने जो कुछ बताया, उससे उसका खून खौल उठा। उसने उसी समय देवदत्ता को बंदी बनवाया तथा प्रातः काल होते ही सूली पर चढ़ाने का आदेश दिया।

भगवान ने फरमाया- गौतम, तुम ने जो दृश्य देखा, देवदत्ता को वधस्थल पर ले जाया जा रहा था।

गौतम बोले- हे प्रभु, क्या इस देवदत्ता का पूर्वजन्म भी ऐसा ही भयावह रहा?

भगवान कहने लगे- उसे भी सुन लो। इसी देवदत्ता का जीव नरक भोग से पूर्व के जन्म में सिंहसेन राजा था। वह सुप्रतिष्ठ नामक नगर का शासक था। उसके श्यामा आदि पाँच सौ रानियाँ थी, किन्तु वह मात्र

श्यामा में ही इतना आसक्त हो गया कि उसने शेष रानियों की सर्वथा उपेक्षा कर दी। न उन में से किसी से वह कभी बोलता और न ही किसी अन्य रीति से कभी किसी की सुध लेता। इस कारण चार सौ निन्यानवे रानियाँ विक्षुब्ध हो उठी तथा उनकी माताओं ने किसी भी उपाय से श्यामा रानी की जीवन लीला समाप्त डालने का निश्चय कर लिया।

श्यामा रानी को उनके इस निश्चय भी भनक पड़ गई। वह आतंकित हो गई और सोच में पड़ गई कि विष, शस्त्र या अन्य किसी विधि से उसकी कैसी कुमृत्यु हो सकती है? वह कोप भवन में जाकर बैठ गई। राजा को सूचना हुई, उसने आकर पूछा- तुम्हारे इस कोप भवन में बैठने तथा रुष्ट होने का क्या कारण है? रानी ने अन्य रानियों की माताओं द्वारा योजित योजना राजा को बताई। राजा ने कुपित होकर कहा- प्रिये, तुम तनिक भी चिन्ता न करो। मैं ऐसा उपाय करूंगा कि तुम पूर्णतया निश्चिंत हो जाओगी।

तब सिंहसेन राजा ने नगर के बाहर एक बड़ी कूटागार शाला बनवाई और अपनी चार सौ निन्यानवे रानियों की माताओं को निमंत्रण देकर वहाँ बुलवाया। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वे सब रानियों की

माताएँ वहाँ पहुँची। वहाँ सबको स्वादिष्ट भोजन कराया गया तथा जी भरकर मदिरा पिलाई गई। फिर अनजाने में राजा ने बाहर निकलकर शाला बाहर से बन्द करवा दी तथा उसके चारों ओर आग लगवा दी। सभी माताएँ तड़प-तड़प कर मर गई।

उसी सिंहसेन के जीव ने छठी नरक की यातना भोगने के बाद इसी नगर में देवदत्ता के रूप में जन्म लिया। गौतम यह वही देवदत्ता थी।

गौतम स्वामी ने हाथ जोड़कर पृच्छा की- भगवन, क्या ऐसा दुष्ट जीव भी कभी मोक्षगामी बन सकेगा?

हाँ गौतम, देवदत्ता का जीव मोक्षगामी भी बनेगा।

ऐसा भी होगा, प्रभु! वह कब और कैसे?

देवदत्ता सूली पर चढ़कर रत्नप्रभा नरक में उत्पन्न होगी। तब यह जीव नाना जन्मों में भ्रमण करता रहेगा तथा अपने अशुभ कर्मों के फल भोगता रहेगा। फिर गंगपुर नगर में एक श्रेष्ठि के घर पुत्र रूप में जन्म लेगा, जहाँ वह दीक्षा लेकर कठिन संयम एवं तप का आचरण करेगा। फलस्वरूप वह सौधर्म देवलाक में देव रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यवन करके उसका जन्म महाविदेह क्षेत्र में होगा जहाँ उत्कृष्ट रीति से संयम का

अनुपालन करके वह अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्षगामी बनेगा।

भगवन्, दु:खों का अन्त कैसे होता है?

जैसी दुष्ट भावनाओं के साथ अशुभ कर्मों का बंध किया जाता है, वैसे ही दारुण दु:खों के साथ उनका फल भोगना ही पड़ता है। उनका अन्त उतने ही उत्कृष्ट भाव से संयम एवं तप के आचरण द्वारा होता है। यही दु:ख विपाक है।

स्त्रोत- विपाक सूत्र (दु:ख विपाक)

सार- कर्मबंध के समय ही सावधानी जरूरी है।

❖ ❖ ❖

श्रेष्ठ सुख सुबाहुकुमार का

प्राणनाथ, रात्रिकाल में मैं जब अपनी सुकोमल शय्या पर सो रही थी, तब न तो मैं प्रगाढ़ निद्रा में थी और न मैं जाग ही रही थी- मैंने एक स्वप्न देखा- धारिणी रानी ने अपने पति राजा अदीनशत्रु को सूचना दी।

प्रिये, क्या स्वप्न था वह? तुम मुझे बताओ, मैं तुम्हें उसका फल कहूंगा- राजा ने उत्सुक होकर पूछा।

राजा अदीनशत्रु हस्तशीर्ष नगर का शासक था। यह नगर अति सुन्दर था तथा यहाँ के निवासी नीतिपालक, धन सम्पन्न एवं गुणशील थे। राजा भी प्रजापालक, न्यायप्रिय एवं सद्गुण सम्पन्न था। धारिणी उसकी पटरानी थी। इसके सिवाय उसके अन्य नौ सौ निन्यानवे रानियाँ भी थीं। राजा के प्रश्न पर धारिणी ने अपना स्वप्न कहा- महाराज, मैंने स्वप्न में एक विशाल आकार का सुदर्शनीय सिंह देखा।

इस स्वप्न का अर्थ यह है कि तुम्हारी कुक्षि से

ऐसा पुत्र जन्म लेगा जो यशस्वी, वीर, सर्वगुण सम्पन्न एवं कुल दीपक होगा। वह गौरव से हमारा मस्तक उन्नत बनाएगा- राजा ने हर्षित होकर कहा।

धारिणी यह फल सुनकर आनन्द मग्न हो गई- वह ऐसे यशस्वी पुत्र की माता बनेगी, माता के लिए इससे बढ़कर आनन्द और क्या हो सकता है? वह अपने गर्भ का इस विधि से पालन करेगी कि होने वाली सन्तान श्रेष्ठ संस्कारों से विभूषित बने।

मातृ पद पर आसीन होते ही रानी की सम्पूर्ण चर्या ही परिवर्तित हो गई। गर्भस्थ शिशु के भी शुभ कर्मों का पुण्योदय कहें कि धारिणी प्रतिक्षण गर्भ की सुपालना हेतु चिन्तन मग्न रहती। रानी का उठना, बैठना, चलना, सोना आदि सभी क्रियाएँ पूर्ण यतना एवं सावधानी के साथ होने लगी कि गर्भ को किसी भी रूप में किसी कष्ट का अनुभव न हो। वह भोजन भी ऐसा करती जो मेधा और आयु को बढ़ाने वाला, देह को निरोग एवं इन्द्रियों को स्थिर रखने वाला तथा देशकाल के अनुकूल होता अर्थात् उसके द्वारा ग्रहण किया जाने वाला भोजन न अधिक तिक्त, न अधिक कटु, न अधिक कषैला, न अधिक अम्ल, न अधिक मधुर होता, अपितु गर्भ वृद्धि के लिए हितकारक, परिमित एवं पथ्य होता। उस भोजन

से उसे चिन्ता, शोक, भय, दीनता या परित्रास का अनुभव नहीं होता। ऐसे भोजन, आच्छादन, गंधमाल्य और अलंकारों का भोग करती हुई धारिणी रानी सुखपूर्वक उस गर्भ का पालन करने लगी।

गर्भकाल सम्पूर्ण होने पर रानी ने एक सुन्दर एवं सुलक्षण पुत्र को जन्म दिया। ऐसे पुत्र के जन्म का संवाद फैलते ही सब ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। जिस दासी ने जाकर यह शुभ संवाद राजा को दिया, उस ने अपना हर्षातिरेक इस प्रकार व्यक्त किया कि अपने मुकुट के सिवाय धारण किए हुए अपने सारे आभूषण उसे पुरस्कार में दे डाले। सारा नगर सजाया गया तथा पुत्र का भव्य रीति से जन्मोत्सव मनाया गया। पुत्र का नामकरण किया गया- सुबाहुकुमार।

सुबाहुकुमार अतीव पुण्यशाली था- बाल्यकाल में सुखदायक लालन-पालन हुआ, योग्य वय में उसे शस्त्र एवं शास्त्र की श्रेष्ठ शिक्षा दी गई एवं यौवन में प्रवेश करने पर पुष्पचूला आदि पाँच सौ सुकन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण किया गया। अपने सुख सुविधायुक्त प्रासाद में निवास करता हुआ पूर्व सुकृत के सुफलस्वरूप वह पाँचों प्रकार के इन्द्रिय भोग-भोगता हुआ परम सुख के साथ रहने लगा।

एक समय श्रमण भगवान महावीर हस्तिशीर्ष नगर के बाह्य भाग में स्थित पुष्पकरंड उद्यान में पधारे। नगर निवासी भगवान के दर्शन-वन्दन हित जाने लगे। राजा अदीनशत्रु अपने सुपुत्र सुबाहुकुमार एवं परिवार के साथ ठाठबाट से भगवान की सेवा में पहुँचा। भगवान ने मार्मिक धर्मोपदेश दिया, सबका मन हर्षित हुआ, किन्तु सुबाहु के हृदय में जागरण का विशेष प्रकाश व्याप्त हो गया।

धर्मोपदेश सुनकर सभी अपने-अपने स्थान को लौट गए, पर सुबाहुकुमार वहीं खड़ा रहा। विनम्र स्वर में उसने भगवान से निवेदन किया- भगवन्, मुझे धर्मोपदेश सुनकर अतिशय आनन्द हुआ है- सांसारिकता के विरूद्ध आत्मोन्मुखी होने का मन कर रहा है मेरा। मैं त्याग मार्ग पर अग्रसर होना चाहता हूँ। अभी दीक्षा ग्रहण करने में तो मैं स्वयं को समर्थ नहीं पाता हूँ किन्तु मैं आपसे श्रावक के व्रत अंगीकार करने का अभिलाषी हूँ।

देवानुप्रिय, जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्म कार्य में विलम्ब कदापि न करो- भगवान ने निर्देश दिया।

सुबाहुकुमार तब श्रावक के व्रत धारण करके स्वस्थान को लौट गया। उसके चले जाने पर गौतम स्वामी ने भगवान से अपनी जिज्ञासा व्यक्त की- प्रभु, यह सुबाहुकुमार बाह्य रूप से इतना ऋद्धि सम्पन्न और

सुन्दर है तथा अंतरंगता से भी वैसा ही ऋद्धि सम्पन्न और सुन्दर प्रतीत होता है। यह सब लोगों को इष्टकारी तथा प्रियकारी भी है। ऐसी भव्य समृद्धि इसको किस कार्य के फलस्वरूप प्राप्त हुई है? कृपा करके बताएँ कि यह पूर्व जन्म में कौन था तथा इसने किन श्रेष्ठ कार्यों का सम्पादन किया?

तब भगवान ने फरमाया- गौतम, प्राचीन समय में हस्तिनापुर नामक एक नगर था। उसमें सुमुख नामका एक गाथापति निवास करता था। एक समय धर्मघोष नाम के एक स्थविर अपने पाँच सौ शिष्यों सहित उस नगर में पधारे। उनके एक शिष्य सुदत्त नाम के अणगार मास-मास खमण किया करते थे। एक मासखमण के पारणे के दिन वे तीसरे पहर गुरु से अनुज्ञा प्राप्त कर भिक्षा हेतु निकले। नगर में उन्होंने सुमुख गाथापति के घर में प्रवेश किया।

मुनिराज को अपने द्वार पर पधारते हुए देखकर गाथापति अपने आसन से उठा, सात-आठ कदम सामने गया तथा मुनिराज से निर्दोष आहार ग्रहण करने के लिए अभ्यर्थना करने लगा। वह मुनि को रसोईगृह में ले गया तथा उसने शुद्ध भाव से निर्दोष आहार-पानी बेहराया। वह आहार-द्रव्य दोषरहित था, दाता शुद्ध भावों से

अभिभूत तथा प्रतिग्रही संयम पालन में निष्ठावान- इस शुद्धता की त्रिवेणी में वह दान, परम पावन दान बन गया। भाव शुद्धता के प्रबल प्रवाह में सुमुख गाथापति ने संसार परित्त किया तथा किया मनुष्यायु का बंध। आकाश में देव दुंदुभी बजी और अहोदाणं अहोदाणं का जयघोष गूंजा। घर में पंच दिव्य प्रकट हुए। इस दान की महिमा का समाचार चारों ओर फैल गया। उसी पवित्र दान के फलस्वरूप सुमुख गाथापति ने इस जन्म में सुबाहुकुमार का सुस्वरूप धारण किया है।

यदि ऐसा है तो क्या भगवन, यह सुबाहुकुमार आपके समीप दीक्षा अंगीकार भी करेगा? गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया।

हाँ गौतम, समय आने पर यह सुबाहुकुमार मेरे समीप दीक्षा भी ग्रहण करेगा- भगवान ने अपने शिष्य की जिज्ञासा शान्त की।

कुछ समय पश्चात् भगवान महावीर वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए।

एक बार सुबाहुकुमार ने तेला (तीन दिन का उपवास) व्रत किया तथा पौषधशाला में धर्म ध्यान में निमग्न हुआ। उस समय उसके हृदय में इस मनोरथ का चिन्तन जागृत हुआ- सर्वज्ञ भगवान महावीर इस संसार

महासागर में भव्य जीवों के उत्थान के लिए ज्योतिर्स्तम्भ स्वरूप हैं। कई राजा, राजकुमार एवं सामान्य जन उनके समीप दीक्षा ग्रहण करके आत्म कल्याण करते हैं। अब यदि भगवान इस नगर में पधारें तो मैं भी उनके समीप दीक्षा अंगीकार कर लूंगा।

चिन्तन संकल्प में परिवर्तित हो गया और उस संकल्प को भगवान ने अपने ज्ञानालोक में जाना। वैसे अध्यवसाय को जान कर भगवान हस्तिशीर्ष नगर में पधारे। सब दर्शनार्थ गए, सबने धर्मदेशना सुनी, पर सुबाहुकुमार वैराग्य रंग में रंग गया। उसने निवेदन किया- हे भगवन्, मैं आपके चरणों में दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ और उसके लिए अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त करके वापिस लौटता हूँ।

सुबाहुकुमार प्रासाद में पहुँचा। उसने माता-पिता से निवेदन किया- पूज्यवर, मैं अब संसार में रमण नहीं करना चाहता हूँ। मेरा मन राग से विराग की ओर मुड़ गया है और मैं अब भगवान के समीप दीक्षा लेकर आत्मोत्थान करना चाहता हूँ। कृपया आप अपनी अनुमति प्रदान करें।

माता-पिता ने उसे साधु जीवन की कठिनाइयाँ बताई और निरूत्साहित करने का प्रयत्न किया किन्तु पुत्र

के उन्नत संकल्प के आगे अन्ततः उन्हें झुकना पड़ा। अनुमति के साथ ही उन्होंने पुत्र के दीक्षोत्सव का भव्य आयोजन किया। संयम धारण करके मुनि सुबाहुकुमार ने ग्यारह अंग-शास्त्रों का ज्ञानार्जन किया तथा प्रवृत्ति की कठोर तप के आचरण में। अनेक वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करते हुए उन्होंने समाधि पूर्वक मरण का वरण किया।

तब गौतम स्वामी ने मुनि सुबाहुकुमार के विषय में पृच्छा की- भगवन्, ऐसे पुण्यशाली जीव का मुक्ति गमन कब होगा?

हे गौतम, मुनि सुबाहुकुमार का जीव यहाँ से सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ है। वहाँ से च्यवन करके एवं देवलोक के कई भव करने के बाद यह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य रूप से जन्म लेगा एवं विशुद्ध संयम पालन से सम्पूर्ण कर्म क्षय करके मोक्ष प्राप्त करेगा। मोक्ष में जाने के लिए बांधे हुए पुण्य कर्मों को भी खपाना पड़ता है। यही सुख विपाक है- भगवान ने फरमाया।

स्त्रोत- विपाक सूत्र (सुख विपाक)

सार- शुभ एवं अशुभ सभी कर्मों का क्षय करने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है।

❖ ❖ ❖